विश्व-प्रसिद्ध
रोमांचक
कारनामे

विश्व-प्रसिद्ध

रोमांचक कारनामे

संकलन : अभय कुमार दुबे
चित्रांकन : ए. एच. हाशमी

पुस्तक महल,
खारी बावली, दिल्ली-110006

प्रकाशक

पुस्तक महल, दिल्ली-110006

सबद्ध सस्था

हिन्द पुस्तक भण्डार, दिल्ली-110006

बिक्री केन्द्र

1 गली केदार नाथ, चावडी बाजार दिल्ली-110006
फोन 265403

2 खारी बावली, दिल्ली-110006
फोन 268292, 268293

3. 10-B, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागज, नई दिल्ली-110002
फोन 239314 2911979

प्रशासनिक कार्यालय
F-2/16, अन्सारी रोड,
दरियागज, नई दिल्ली-110002
फोन 276539, 272783, 272784

Vishva-Prasiddha Romanchak Karname- A K Dubey
Pustak Mahal, Khari Baoli, Delhi 110006 Price · Rs 12/-

प्रथम सस्करण : अक्तूबर, 1985
चौथा संस्करण : जनवरी, 1988

मूल्य

चिल्ड्रन पेपरबैक संस्करण : 12/-
लाइब्रेरी सजिल्द सस्करण : 24/-

Printed at Kay Kay Printers, Delhi-110 007

प्रकाशकीय

सही मूल्यो पर प्रामाणिक एव स्तरीय पुस्तकें प्रकाशित करने के कारण ही 'पुस्तक महल' ने आपके पारिवारिक प्रकाशक की पदवी पाने का गौरव प्राप्त किया है। हमारी सदैव चेष्टा रही है कि हम अछूते विषयों पर रोचक एवं सुबोध शैली में संबंधित विशेषज्ञो एवं विद्वानों से ऐसी पुस्तके लिखवाकर अपने प्रिय पाठकों को दे, जो मनोरंजन के साथ-साथ उनका ज्ञानवर्धन भी करें। सौभाग्य की बात है कि हमारे गुणग्राही पाठकों ने सदैव हमारे इन विनम्र प्रयासो को सराहा है। आपकी यही सराहना हमारी जीवन-शक्ति बन गई है और हमें उत्तम कोटि के नित-नवीन प्रकाशन करने की प्रेरणा देती रहती है।

हमारी यह नई पुस्तक 'विश्व-प्रसिद्ध रोमाचक कारनामे' आपके हाथो में है। इसमें गाथाएं हैं उन दुस्साहसी मनुष्यों की, जिनका जन्मजात स्वभाव ही चुनौतियो से जान पर खेल कर जूझ जाना रहा है—चाहे वे प्राकृतिक हों या स्वयं मनुष्य निर्मित। उनका यही स्वभाव उन्हें बर्फ ढके ध्रुवों से लेकर गगनचुम्बी पहाड़ी चोटियों तक ले गया है। वे तूफानी समुद्रों की हहराती लहरों से लेकर आदमखोर जानवरों के रक्त-पिपासु जबड़ो तक से निहत्थे होकर भी जूझते रहे हैं।

कुछ लोगों की इसी जुझारू वृत्ति और चीजों के प्रति उनके इस रोमाचक दृष्टिकोण ने ही आज सपूर्ण मानवजाति को इस सृष्टि का नियामक बना दिया है। बहुत समय से हमारी इच्छा थी कि हम अपने प्रिय पाठकों के लिए विश्व-स्तर पर हुए श्रेष्ठतम रोमांचक कारनामों का एक संकलन प्रस्तुत करे। आप लोगों की शुभकामनाओ से हम इस प्रकार की 21 सच्ची गाथाएं जुटा पाए। प्रायः जीवन के सभी क्षेत्रों से सबंधित साहसिक कारनामों का समावेश इनमे कर दिया गया है।

आप लोगों के हाथों में इस संकलन को सौपते हुए हमें काफी प्रसन्नता हो रही है। आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है कि पुस्तक महल की यह नई पुस्तक न केवल आपको रोमांचित करेगी अपितु आपके मन में कुछ कर गुजरने की भावना भी जगाएगी।

—प्रकाशक

कथाक्रम

सागर में मौत और तबाही

आदमी जीतता ही नहीं हारता भी है लेकिन कभी-कभी उसकी हार भी रोमांच और प्रेरणा से भरी हुई एक अमर गाथा बन जाती है। सन् 1912 में अंधमहासागर में अपनी पहली यात्रा के लिए उतरे अत्यंत भव्य और विशाल पोत 'टाइटनिक' का एक तैरते हुए हिमखण्ड से टकराकर डूब जाना एक ऐसी ही कहानी है।

11 मंजिल ऊंचे, ढाई फुटबाल के मैदानों जितने लम्बे, सारी सुख-सुविधाओं से लैस 'टाइटनिक' के बारे में यह कहा गया था कि यह कभी नहीं डूब सकता लेकिन उसे डूबने में केवल तीन घण्टे से भी कुछ कम समय लगा। टाइटनिक के साथ 15 सौ से अधिक यात्रियों ने भी जल-समाधि ली।

1
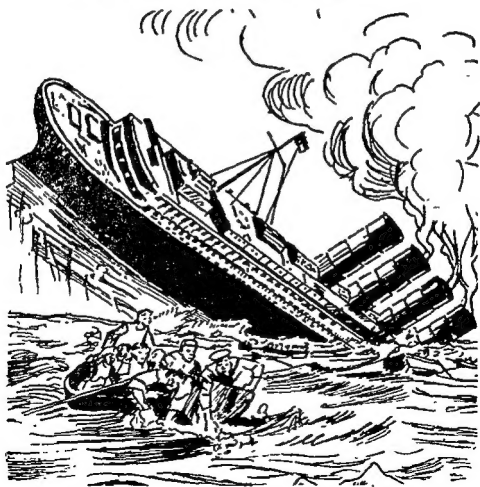
दस बजकर चालीस मिनट। हा, उस समय रात को घड़ियां ठीक यही समय बता रही थी, जब व्हाइट स्टार कम्पनी के नए 'टाइटनिक' के ऊपर पहली बार खतरे के बादल मंडराए। ग्यारह मंजिल ऊंचा, दो फुटबाल मैदानों के बराबर लम्बा, तथा दुनिया भर की सुख-सुविधाओं और राग-रंग के इंतजामो से भरा हुआ टाइटनिक अपनी पहली यात्रा में न्यूयार्क की ओर जा रहा था। उसने अपने समुद्री जीवन के केवल चार ही दिन गुजारे थे। यह 14 अप्रैल, सन् 1912 की घटना है। टाइटनिक की अभी ठीक से सुमद्र के पानी से दोस्ती भी नहीं हुई थी कि अचानक उसे सागर और मानवीय रिश्तों के इतिहास की सबसे दुखद घटना का शिकार होना पड़ा। इस जहाज पर 2207 व्यक्ति सवार थे। वे अपने-अपने क्षेत्र के विशिष्ट धनी और गणमान्य लोग थे। उनका ख्याल था कि टाइटनिक की पहली समुद्री यात्रा का आनंद उठाना उनके लिए परम सौभाग्य की बात है। ठीक इसके विपरीत टाइटनिक और उनके संयुक्त भाग्य को सागर मे बहती हुई विशाल हिमशिलाओ का ग्रहण लगने की दुर्भाग्यपूर्ण शुरूआत हो चुकी थी।

जहाज साढ़े बाइस समुद्री मील की गति से तैर रहा था। तभी उसकी सबसे ऊपरी मंजिल से झांकते हुए फ्रेड्रिक फ्लीट ने जलपोत के ठीक सामने एक हिमशिला समुद्र में से उभरते हुए देखी। यह एक खतरे की घण्टी थी। फ्लीट का काम ही इस किस्म के सकटों से पोत के चालकों को सावधान करना था। उसने तेजी से अपना काम किया। तीन बार चेतावनीस्वरूप खतरे की घण्टी बजाई और फोन उठा कर उच्चाधिकारी को सूचित किया कि एक हिमशिला ठीक सिर पर आ गई है। बदले मे फ्लीट को दूसरे सिरे से शात स्वर मे केवल 'धन्यवाद' का इकलौता शब्द सुनाई पड़ा।

आने वाले 37 सेकण्ड फ्लीट और उसके साथी ली के लिए मृत्यु की प्रतीक्षा के क्षण थे लेकिन मौत इतनी आसानी से नही आने वाली थी। अजीब परिस्थिति थी। न तो जलपोत अपना रास्ता बदल रहा था और न ही हिमशिला को समुद्री लहरे किसी भी प्रकार पोत के रास्ते से हटने के लिए विवश कर पा रही थीं। फ्लीट को लगा कि उसे अपेक्षित टक्कर के धक्के का अहसास नही हुआ है, शायद इसलिए उसने मान लिया कि जलपोत इस प्राकृतिक मुसीबत से बच निकला है। यह उस भ्रम की शुरूआत थी, जिसका अत अगले तीन घण्टों में 15 सौ निर्दोष व्यक्तियों के साथ टाइटनिक जैसे विशाल और खूबसूरत पोत की जल-समाधि के साथ हुआ।

इसी समय ब्रिज के पास निगरानी कर रहे जार्ज थामस रो को इंजनों मे अजीब घरघराहट-सी महसूस हुई और उनकी आंखों ने भय और आश्चर्य से देखा कि पानी से लगभग सौ फुट ऊपर एक विशाल हिमशिला पोत के बिल्कुल सामने खडी है। थामस रो के लिए दूसरा आश्चर्य यह था कि दिखाई देने के क्षणभर बाद ही वह हिमशिला एक छलावे की तरह अदृश्य भी हो गई।

प्रथम श्रेणी के भोजनगृह मे बैठे वेटरो को जहाज की गति मे हल्की रुकावट-सी आती प्रतीत हुई। इस हल्के झटके से मेज पर रखे चांदी के बर्तन झनझना उठे। कैबिनो में बैठे यात्रियों ने महसूस किया कि शायद तेज हवा ने जहाज को हिला दिया है। कुछ अन्य यात्रियो को कपडे के थान फटने जैसी ध्वनि सुनाई दी। कुछ को लगा कि रसोईघर मे कोई छोटी-मोटी दुर्घटना हुई है लेकिन जहाज के प्रबंध संचालक ने समझ लिया कि टाइटनिक अवश्य ही किसी चीज से टकरा गया है।

दरअसल हिमशिला की दीवार जहाज की बाहरी दीवार से सटी हुई सरक रही थी। बर्फ के टुकडे छिटककर खुली खिड़कियो से अदर आ रहे थे। विपत्ति से बेखबर पोत के मुसाफिर अपने-अपने मूड के अनुसार व्हिस्की के नशे, डिनर पार्टी की उत्सुकता, ब्रिज के खेल के मनोरजन तथा नींद के आगोश में डूबे हुए थे।

फ्लीट के टेलीफोन का जवाब देने वाले फर्स्ट अफसर विलियम मुर्डोख के हाथ-पैर फूले हुए थे। उसने खबर पाते ही जहाज के इंजन को उल्टा चलाया लेकिन तब तक काफी देर हो चुकी थी। इसके फलस्वरूप जो टक्कर हुई उसी की घरघराहट और झटका यात्रियों और वेटरो ने अनुभव किया था। कमाण्डर के आदेश से पहले ही मुर्डोख ने पोत के आपातकालीन द्वार बद कर दिए। बॉयलर रूम नम्बर 6 में भयानक धमाका हुआ और सागर का पानी हहराता हुआ जहाज के अंदर आ घुसा। बॉयलर रूम नम्बर 5 मे भी खिड़कियो और दरवाजे के रास्ते सागर का पानी भर रहा था। बंकर मे रखा कोयला पानी के धक्के से एक व्यक्ति पर मलबे की तरह बरस पडा लेकिन वह व्यक्ति किसी तरह बाल-बाल बच गया।

□ □ □

ग्यारह बज कर पचास मिनट। टाइटनिक के मुसाफिर सोच रहे थे कि जहाज आखिर रुक क्यों गया। पोत की निचली सतह के 6 जलरोधी डिब्बों में पानी भर चुका था। चौथे डिब्बे में चिट्ठियां छांटते हुए डाकियों को बेतरतीब भागने के लिए विवश होना पडा। इंजीनियरो ने बॉयलर बंद कर दिया वरना आग लग जाती।

अपने दो वरिष्ठ सहयोगियो सहित पोत के अनुभवी कप्तान स्मिथ ने पोत की स्थिति का निरीक्षण करके जीवन रक्षक नौकाएं तैयार करने का आदेश दिया। कप्तान का दूसरा आदेश वायरलैस आपरेटर के लिए सहायता संदेश प्रसारित करने हेतु था।

टाइटनिक पर जोर-जोर से यात्रियों की हाजिरी होने लगी। नींद में डूबे हुए रसोइयों को झकझोर कर उठाया गया। वे झुंझलाते हुए उठे लेकिन जहाज के तले में भरते हुए पानी को देखकर, वे भी डैक की ओर भागे।

यात्रियों से अपनी लाइफ बैल्ट सहित फौरन डेक पर पहुंचने के लिए कहा गया। खतरे की गंध मिलते ही पोत पर मौजूद संभ्रांत मुसाफिरों की शालीनता और निश्चिलता पर व्यग्रता और आतंक छा गया। उनके चेहरे से संस्कारो का मुखौटा उतरने लगा। अभी भी कुछ मदहोश यात्रियों ने संभवतः संकट की गंभीरता को पूरी तरह नहीं समझा था। एक महिला को केबिन से निकलने-निकलते अपने आभूषणो की याद आई और वह वापस वहां जाकर शृंगार करने में व्यस्त हो गई। परिस्थिति से अवगत होने का एक धनपति यात्री पर ऐसा असर पड़ा कि वह एक लाख डालर के बैंक ड्राफ्ट केबिन में ही छोड़कर डैक की ओर दौड़ गया। द्वितीय और तृतीय श्रेणी के मुसाफिरों ने अपेक्षाकृत परिस्थिति को थोड़ा जल्दी ही समझ लिया।

सारे मुसाफिरों की डैक पर हाजिरी हुई। प्रथम श्रेणी के लोग केंद्र में थे तथा द्वितीय [illegible]

नाव वाले डैक पर 16 नौकाएं तैयार हुईं। इन पर 1178 व्यक्ति बैठ सकते थे। इस तरह 2207 व्यक्तियों में से कौन पहले नौकाओं पर चढ़ेगा, इसकी प्राथमिकता तय करना जरूरी था। कप्तान स्मिथ ने महिलाओं और बच्चों को पहले जीवन रक्षक नौकाओं का उपयोग करने का मौका देने का निश्चय किया।

तभी बॉयलर रूम नम्बर 5 व 6 के बीच की दीवार पानी के दबाव से टूट गई। पोत में पानी और उसका फेन अपना तांडव करने लगा। अगर डेक बहुत ऊंचा न होता तो शायद टाइटनिक को जल-समाधि लेने के लिए मृत्यु के आतंक से भरे ये लम्बे क्षण भी न गुजारने पड़ते।

□ □ □

बारह बज कर तीस मिनट। मानवीय स्वभाव की असली विचित्रता, उसका वास्तविक धैर्य व उसकी जिंदा रहने की ललक वास्तव में संकट के समय ही पता चलती है। उसकी कायरता तथा अन्य क्षुद्र प्रवृत्तियां भी तभी अपनी पूर्णता के साथ उजागर होती हैं। जीवनरक्षक नौकाओं में कई महिलाएं अपने प्रेमियों और पतियों को छोड़कर बैठने के लिए तैयार नहीं थीं। पत्नियां एक बारगी बच्चों की खातिर तैयार हो भी जाती लेकिन प्रेमिकाओं को समझाना बहुत कठिन था। कुछ जांबाज प्रवृत्ति के यात्री नौकाओं का सहारा लेना अपना अपमान समझ रहे थे और कुछ रईस लेकिन जिंदगी को जुआ समझने वाले मुसाफिरों ने जहाज पर ही रहकर अपनी किस्मत आजमाने का निश्चय किया। यह दूसरी बात है कि इस बार वे केवल हारने के लिए ही दाव लगा रहे थे।

टाइटनिक की संकटकालीन सीढ़ियां एक-एक करके पानी में डूबती जा रही थीं। कप्तान और उनके साथी महिलाओं तथा बच्चो पर नावों में बैठने के लिए दबाव

डाल रहे थे। एक सुंदर फ्रांसीसी लड़की सीढ़ियों पर फिसल गई। एक अन्य वयस्क स्त्री असावधानीवश नाव व जहाज के बीच सरक गई लेकिन उसकी टांग पकड़कर उसे वापस खींच लिया गया। एक मोटी औरत को नाव में बैठाना पड़ा।

साढ़े बाहर बजे स्त्रियों और बच्चों की दूसरी टुकड़ी भेजने का आदेश दिया गया। इसी समय कुछ पुरुषों ने नाव पर पहले चढ़ने की जिद करनी शुरू कर दी। अन्य यात्री सुरक्षा की तलाश में इधर-उधर भटकने लगे। लगभग पौने दो बजे पोत के अगले डेक पर सागर का अधिकार हो गया। जीवन रक्षक नौका नम्बर 14 की तरफ लोग झपट पड़े। इस पर फर्स्ट अफसर ने पिस्तौल निकालकर धमकाया कि ये नावें केवल स्त्रियों और बच्चों के लिए हैं।

उधर इंजन वाले कमरे में चालक जान की बाजी लगाकर इस कोशिश में लगे हुए थे कि भाप बनती रहे, रोशनियां जलती रहें और पम्प चालू रहे। इसी बीच इस्पात के फर्श से रिस-रिस कर पानी ऊपर आने लगा। देखते-देखते पानी कमर तक आ गया और दूसरे क्षण बॉयलर में काम करने वाले कर्मचारियों ने जल-समाधि ले ली।

एक बजकर पचपन मिनट पर चार नम्बर की अंतिम जीवन रक्षक नौका को पानी में उतारा गया। अभी पिछली नौकाएं दूर दिखाई देने वाले स्टीमरों तक यात्रियो को पहुंचाकर वापस नहीं लौटी थीं और टाइटनिक आधा डूब चुका था।

जहाज पर जो लोग मौजूद रह गए थे, वे अपनी जान बचाने के प्रयत्नों में खुद लग गए क्योंकि नौकाओं में बैठने की आपाधापी अब समाप्त हो चुकी थी। अपने आप को असहाय मान चुके लोग इतनी कोशिश जरूर कर रहे थे कि वे सबसे ऊपर के डैको की रेलिंग से दूर बने रहे।

☐ ☐ ☐

दो बज कर पांच मिनट। 'दोस्तों, तुम्हे बच्चों और महिलाओ के लिए जो कुछ हो सके वह करना चाहिए और अपनी सुरक्षा करने की कोशिश करनी चाहिए।' यह कप्तान स्मिथ का आखिरी सदेश था, जो उन्होने पोत के कर्मचारियो को दिया। कुछ यात्रियों ने यह सदेश पाते ही पानी मे गोता लगा दिया लेकिन उनके दुर्भाग्य से उसी समय पोत के एक ओर के झुकाव को संतुलित करने के लिए कुर्सियां और मेजें इत्यादि पानी में फेकी जाने लगीं। इन चीजो ने तैरने वालो के रास्ते मे रुकावटे पैदा की।

फ्रांसीसी फर्नीचर, गुलाबी कालीन तथा क्रिस्टल फानूस से सजे टाइटनिक के रेस्तरां सूने पडे थे। धूम्रपान के कमरे में पोत का निर्माता थामस एण्ड्यूज, जिसने 4 दिन पहले अपनी रचना पर गर्व किया था, अपनी लाइफ बैल्ट को सामने रखे हुए खामोश बैठा था। एक अन्य महिला की गोद के बच्चे को एक रसोइये ने बचाने की कोशिश की लेकिन सागर की लहरे उसे छीन ले गई। किसी महिला को अपने ज्योतिषी की भविष्यवाणी याद आ रही थी, जिसमे उससे कहा गया था कि वह

पानी से दूर रहे। तभी पोत के बैंडमास्टर ने अपनी जिंदगी का अंतिम गीत बजाना शुरू किया। वह ईश्वर से प्रार्थना कर रहा था कि वह जल की शक्ति से उसकी रक्षा करे।

□ □ □

दो बजकर तीस मिनट। धीरे-धीरे टाइटनिक का अगला हिस्सा समुद्र में टेढ़ा होता जा रहा था और पिछला हिस्सा ऊपर उठता जा रहा था। दरअसल, हिमशिला ने उसके अगले भाग को ही घातक रूप से नुकसान पहुंचाया था। ज्योंही टाइटनिक पूरी तरह ऊंचा उठा, ऊपर के भाग की खिड़कियों का कांच व अन्य सामान नीचे गिरने लगा। दूर जीवन रक्षक नौकाओं में बैठे यात्रियों ने भय से इस दृश्य को देखा उनकी आंखों के सामने दुनिया का सबसे विशाल और भव्य पोत समुद्र में डूब रहा था।

पानी का तापमान उस समय 28 डिग्री था। तारीख बदल चुकी थी। 15 अप्रैल की रात 1502 व्यक्तियों की जल-समाधि की काली रात थी।

पानी में तैरने वाले लोगों को ठण्डा पानी भयानक कष्ट दे रहा था। पोत के पांचवें अफसर लो ने कई नावो को जोड़कर एक बेड़ा बना दिया। बेड़े को उस जगह खेकर ले जाने की कोशिश की, जहां सैकड़ों लोग अपनी जान बचाने के लिए पानी में हाथ-पैर मार रहे थे लेकिन टाइटनिक के डूबने से इतनी बड़ी भंवर पैदा हुई, जिसमें पहुंच कर वह बेड़ा टूट गया।

क्या टाइटनिक को बचाया नहीं जा सकता था? जिस समय यात्रियों को पहली बार खतरे का आभास हुआ था, उसी समय दुर्घटना स्थल से 10 किमी. दूर लंदन से बोस्टन जाते समय इसी कम्पनी का जहाज 'कैलीफोर्नियन' इस दुर्घटना के गवाह के रूप में हिमखण्डो के डर से रुका हुआ खड़ा था। उसने देखा कि टाइटनिक की सारी बत्तियां गुल हो गई हैं। उसने समझा कि सुदूर पूर्व की परम्परा के अनुसार मुसाफिरों के सोने के लिए आधी रात आते ही जहाजो की बत्तियां गुल कर देने की परम्परा का ही पालन किया जा रहा है।

जब टाइटनिक का वायरलैस सैट किसी अन्य जहाज से सम्पर्क बनाने मे सफल नहीं हुआ तो उनका ध्यान आकर्षित करने के लिए 12.45 बजे पहला रॉकेट छोड़ा गया। चमकीले तारों की फुलझड़ी वाला यह रॉकेट 'कैलीफोर्नियन' की नजर में जरूर पड़ा लेकिन इस जहाज के अधिकारी टाइटनिक का संदेश समझने में असफल रहे। जिन जहाजों तक टाइटनिक के संदेश पहुंचे भी, वे उन संदेशों का पूरा अर्थ नहीं समझ सके, जिसके कारण उन्होंने लौटकर टाइटनिक के जिंदगी व मृत्यु के बीच झूलते अधिकारियो से अजीब-अजीब सवाल पूछे।

जिन यात्रियों की जान बच सकी, उनमें एक शराबखोर रसोइया जौफिन था, जो दुर्घटना के समय भी शराब के तेज नशे में था। उसने अपनी जेबे रोटियों से भर ली

और बाकी बची व्हिस्की भी गले के नीचे उतार ली। व्हिस्की की गर्मी ने उसे लगातार तैरने की शक्ति दी। तभी उसके रास्ते में एक स्टीमर पड़ा,जिसने उसकी जान बचा ली। इन्हीं बचे हुए कुछेक यात्रियों द्वारा दी गई जानकारी के आधार पर टाइटनिक के सागर के साथ संघर्ष की यह कहानी दुनिया को सुनने के लिए मिली।

पूरा यूरोप इस दुर्घटना से दुखी हो गया। हर जगह झण्डे झुका दिए गए। थियेटरो के दरवाजे बंद कर दिए गए। फ्रांसीसी सरकार ने अपने जलपोत एस. एस. फ्रांस के लिए किए जाने वाले समारोह को स्थगित कर दिया। इंग्लैण्ड के साउथम्पटन की एक सड़क के 20 परिवारों में शोक छा गया क्योंकि टाइटनिक की दुर्घटना ने इनके सदस्यों को छीन लिया था। सम्राट जार्ज पंचम व राष्ट्रपति टैफ्ट ने शोक संवेदनाओं का आदान-प्रदान किया।

इस तरह सागर पर मनुष्य की जीत के इतिहास के हाशिए पर सागर को चढ़ने वाली सबसे बड़ी टाइटनिक और 1502 मानवीय प्राणों की बलि की हृदयविदारक कहानी भी अंकित हो गई।

● ●

एक जान और 46 हजार मील लम्बा समुद्र

मनुष्य किसी चुनौती को अस्वीकार नहीं करता—न गगनचुम्बी पहाड़ों की और न ही हहराते तूफानी समुद्रों की। कप्तान जोशुआ स्लोकम का पूरा जीवन भी समुद्रों के गर्व को चूर-चूर करते व्यतीत हुआ था। नोवा स्कोटिया की सबसे ठण्डी जगह नार्थ माउण्टेन में जन्मे जोशुआ के पिता नावों के अच्छे-खासे पारखी थे। इसलिए एक नाविक की तबियत उन्हें विरासत में मिली थी।

लगभग 50 वर्ष के समुद्री जीवन के अनुभव के बाद कप्तान जोशुआ ने एक पुरानी नाव 'स्प्रे' को मरम्मत करके ठीक किया और उसमें अकेले ही बैठकर सारी दुनिया की परिक्रमा के लिए निकल पड़े। अपनी 46,000 मील लम्बी ऐतिहासिक यात्रा में उन्हें भयानक तूफानों, हिंसक आदिवासियों, खूंखार समुद्री जानवरों तथा अनंत प्रतीत होने वाले भयावह एकांत का मुकाबला करना पड़ा।

2
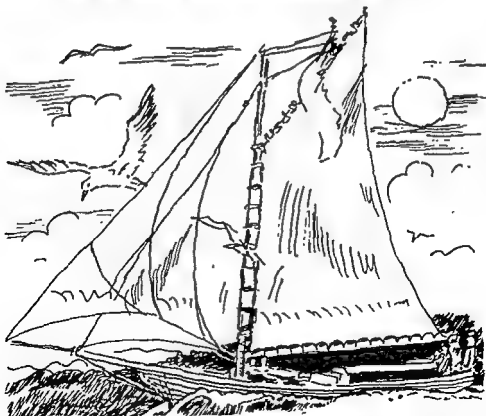
उस 'स्प्रे' नामक नाव को बर्बर रेड इण्डियन कबीलों की शिकारी नावें घेर चुकी थीं। फोर्टेस्क्यू खाड़ी के ये जंगली अपने गले से भयानक आवाजें निकाल रहे थे, जिनका अर्थ था—"तुम्हारे पास जो कुछ है, हमे दे दो।" नाव पर दिखाई देने वाला एक मात्र व्यक्ति चिल्ला-चिल्ला कर जवाब दे रहा था "नही, नही।" लेकिन जंगली अपनी नावो को खेते हुए लगातार 'स्प्रे' के करीब लाते जा रहे थे। उन्हें लग रहा था कि केवल एक व्यक्ति पर काबू पाकर वे नाव पर रखी सामग्री लूट सकते हैं। उन जंगलियो का नेता था ब्लैक पैड्रो, जिसकी कत्ल के कई मामलो में कानून को तलाश थी। पैड्रो की लम्बी दाढ़ी उसकी पहचान थी। अचानक वह अकेला व्यक्ति नाव पर बने केबिन में घुस गया और इसके कुछ क्षण बाद ही उसका एक साथी केबिन से निकल जंगलियो की नजर में आया। थोड़ी ही देर बाद जंगलियो को नाव पर तीसरा नाविक दिखाई दिया। अचानक उन तीन नाविको मे से एक नाविक पिस्तौल से रेड इण्डियनों की 80 गज दूर रह गई नावो पर फायर करने लगा। जंगलियों के इत्मीनान को तोड़ती हुई दो गोलियों मे से एक पैड्रो के पास से गुजर गई। वह बाल-बाल बचा। नाव पर एक की जगह तीन व्यक्तियो की मौजूदगी और गोलियो के धमाको ने उसका साहस तोड़ दिया। जगलियो ने अपनी नावें वापिस मोड ली।

क्या वास्तव मे जंगलियो ने 'स्प्रे' पर तीन आदमी देखे थे? नही, यह उनका दृष्टि-भ्रम था और नाव पर सवार अकेले नाविक कप्तान जोशुआ की एक योजनाबद्ध चालाकी थी। जोशुआ जंगलियों को अपने अकेले होने का अहसास नही दिलाना चाहते थे,इसलिए वह पहले केबिन मे गए और कपडे बदलकर बाहर निकले। जंगलियो ने उन्हे दूसरा आदमी समझा। तीसरा आदमी लकडी का एक पुतला था, जिसे नाविक के कपडे पहना दिए गए थे। जोशुआ एक डोरी की सहायता से उस नकली नाविक को हिलाते जा रहे थे, जिससे जगलियों को वह व्यक्ति हिलता-डुलता दिखाई पड़ रहा था।

अगर जोशुआ के दिमाग में ब्लैक पैड्रो के लुटेरे कबीले को धोखा देने की यह तरकीब नही आती तो क्या वे 46 हजार मील की समुद्री यात्रा कर पाते, जो उन्होंने 24 अप्रैल, सन् 1895 को बोस्टन से 36 फुट लम्बी नौका 'स्प्रे' मे शुरू की थी? क्या वह विश्व के पहले व्यक्ति बन पाते, जो तीन साल से अधिक समय तक एक छोटी-सी नौका में बैठकर विश्व की समुद्री यात्रा करके 27 जून, सन् 1898 को न्यू पोर्ट, रोड

आइलैण्ड पर उतरा था? क्या वह साबित कर पाते कि एक अकेला आदमी समुद्र के भीषण तूफानो, हिंसक जीव-जन्तुओं, खूनी रेड इण्डियनों तथा इस सबसे ऊपर डरावने और अंतहीन लगने वाले एकांत का मुकाबला करके अपने संकल्प और इच्छा के दम पर असम्भव को भी सम्भव बना सकता है?

कप्तान जोशुआ स्लोकम धरती पर रहने वाले उन विरले दुस्साहसियों में से एक थे, जो महासागरों की चुनौती अस्वीकार करना अपना अपमान समझते थे। सन् 1892 की सर्दियों मे जोशुआ को उनके एक मित्र ने बोस्टन आने का निमंत्रण दिया। जोशुआ को उनका दोस्त एक खेत मे कैनवस से ढकी एक सात वर्ष से बेकार पड़ी नाव दिखाने ले गया। उस जीर्ण-शीर्ण ढांचे को देखकर 48 वर्षीय जोशुआ के दिमाग मे पहली बार अकेले एक नाव के सहारे सारी दुनिया की सैर करने का विचार आया। उन्होने अपनी कुल्हाडी से पास में खड़े बलूत के पेड को काट डाला और उसके तने से नाव का पेंदा पुन. बनाया। बाकी लकड़ी से नाव के सम्पूर्ण ढांचे को नया रूप दिया। देवदार की लकड़ी के योग से जोशुआ ने नाव को अडिग मजबूती प्रदान की। पूरे मौसम वे अपनी इस नाव से समुद्र में मछलियां पकड़ते रहे ताकि वह नाव समुद्री पानी की आदी हो जाए।

यात्रा आरभ करने के बाद जोशुआ का पहला पड़ाव ग्लाउसेस्टर बंदरगाह थी, जहा उन्होने 15 दिन की अवधि तक यात्रा के लिए जरूरी साजो-सामान की खरीददारी की। उन्हे आगे बढ़ने पर नोवा एकोरिया में वेस्ट पोर्ट बंदरगाह के पहले एक ऐसा द्वीप मिला, जिसके चारो ओर लाखों मेढक टर्र-टर्र कर रहे थे। उस द्वीप का नामकरण मेढक द्वीप करने के बाद जोशुआ पक्षी द्वीप से गुजरे। नोवा एकोरिया मे अपने स्कूली साथियों से भेंट करने का उन्हे सुअवसर मिला। एक सप्ताह आराम करके उन्होने अपनी यात्रा के पहले संकट, अंधमहासागर से निबटने के लिए शक्ति जुटाई।

अधमहासागर मे पहला सप्ताह बिना किसी दुर्घटना के बीत गया लेकिन यह शांति भी कुछ कम कष्टदायक न थी। अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए उन्हे चांद से चिल्ला-चिल्ला कर बाते करनी पडी। अपनी पिछली समुद्री यात्राओं से जोशुआ ने चांद को अपने अकेलेपन का साथी बनाना सीख लिया था। इसके अलावा उन्हें भयानक कोहरे का मुकाबला करना पडा। एक ओर कोहरे का धुंधलापन उनको आगे देखने में बाधा डाल रहा था, दूसरी ओर एकांत उनके गुजरे जीवन की यादों को कुरेद रहा था। अधमहासागर की लहरें जब तेज होती तो नाव को सम्हालने मे उन्हें जो परिश्रम करना पडता, वह उनका मन कुछ देर के लिए जरूर बहला देता लेकिन सागर के शांत होते ही एकाकीपन उन्हें फिर आ घेरता। यह उनके लिए एक नई चुनौती थी। यह पहली यात्रा थी, जो वह अकेले कर रहे थे। उन्होने अपने बेसुरे गले से गीत गाकर अकेलापन दूर करने की कोशिश की लेकिन थोडी ही देर बाद उन्हे लगा कि उनका बेसुरा गीत समुद्र के कछुओ तक को पसंद नहीं आ रहा है।

10 जुलाई को 12 सौ मील चलकर डेढ़ सौ मील प्रतिदिन की रफ्तार से 'स्प्रे' सेबल अंतरीप पहुंची और 20 जुलाई को उसने फेयल द्वीप के होरी बदरगाह पर लंगर डाला। जोशुआ ने एक नौवहन अधिकारी द्वारा उनकी पायलट सेवा करने का प्रस्ताव विनम्रतापूर्वक अस्वीकार कर दिया क्योंकि इससे उनके रोमांच में कमी आ जाती। दरअसल एकांत की नई समस्या से जूझने के साथ-साथ जोशुआ ने पिछले दिनों कई द्वीपों के किनारो से गुजरते हुए इस यात्रा के दौरान रोमांचकारी आनंद की जो दौलत हासिल की थी, उसे किसी कीमत पर हाथ से नहीं निकलने देना चाहते थे।

24 जुलाई का दिन जोशुआ के लिए नई मुसीबत लेकर आया। पनीर और आलूबुखारों का मिला-जुला भोजन करने के कारण उनके पेट मे भयानक दर्द उठा। पेट के दर्द और तूफान की लहरों से लडते-लड़ते जोशुआ नाव के केबिन के फर्श पर निढाल होकर लेट गए। अगर इस असहाय अवस्था मे उन्हें एक अज्ञात व्यक्ति की मदद न मिलती तो शायद 'स्प्रे' को सागर की लहरे खा डालती।

जोशुआ ने नाव की पतवार के पास एक लम्बे व्यक्ति को मौजूद पाया, जो समुद्री डाकुओ की पोशाक पहने था लेकिन उसने अपना परिचय कोलम्बस के जहाजी बेड़े के एक सदस्य के रूप में दिया और यह भी बताया कि वह पिण्टा नामक नौका का पायलट है और सलाह दी कि जोशुआ को पनीर और आलूबुखारे साथ-साथ नहीं खाने चाहिए थे। जोशुआ को इस अजनबी मेहमान ने आश्वस्त किया कि जब तक वह ठीक नहीं हो जाते वह 'स्प्रे' का संचालन करेगा।

जब तक जोशुआ की हालत बिल्कुल ठीक न हुई, तब तक वह अज्ञात नाविक उनकी नाव का अत्यधिक कुशलता से सही मार्ग पर सचालन करता रहा। 28 जुलाई से एक दिन पहले वह जिस रहस्यमय ढग से आया था, उसी रहस्यमय ढंग से चला गया। जोशुआ उसके चले जाने के बाद उसके व्यक्तित्व के बारे मे सोचते रहे। वह स्वप्न था या सत्य? लेकिन किसी न किसी ने तो उनकी मदद की ही थी। इस नाविक का अस्तित्व जोशुआ के लिए उनके लिए शेप जीवन भर एक रहस्य ही बना रहा।

4 अगस्त तक नाव की रफ्तार को घटाकर 51 मील कर देने वाले तूफान से संघर्ष करते हुए 'स्प्रे' ने स्पेन के दर्शन किए और जिब्राल्टर की खाड़ी पार की। वहां 29 दिन की सफल यात्रा के उपलक्ष्य में जोशुआ को राजभोज दिया गया। जिब्राल्टर के ऐतिहासिक संग्रहालय का भ्रमण करने के बाद उन्हें भावभीनी विदाई मिली, जो सम्भवतः आने वाले खतरो से जूझने के लिए सबसे बड़ी ताकत का काम करने वाली थी।

समुद्री डाकुओं और चोरो के डर से जोशुआ ने भूमध्यसागर, स्वेज नहर, लाल सागर होते हुए पूर्व जाने वाला रास्ता बदल कर 'स्प्रे' का मुंह हार्व अंतरीप की ओर कर दिया लेकिन यह रास्ता भी इसी प्रकार की विपत्ति से भरा था।
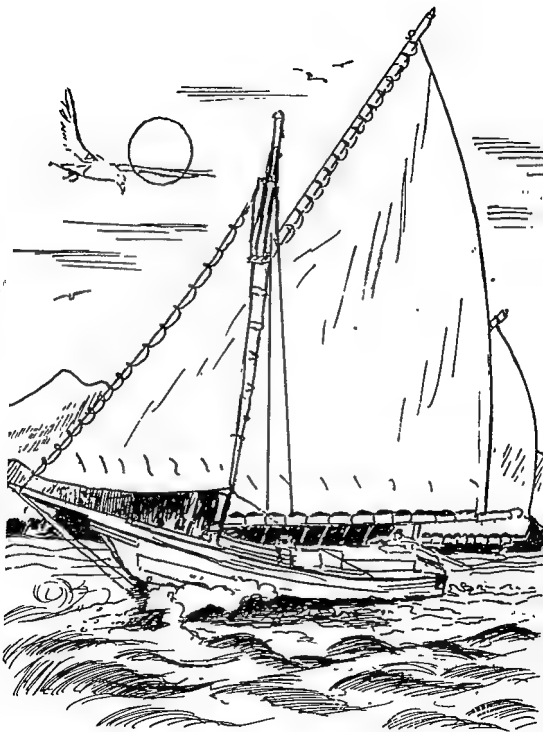
किस्मत बहादुरों का साथ देती है। रास्ते मे क्रूर डाकुओं से भरे हुए स्टीमर से जोशुआ की सागर की लहरो ने रक्षा की। जब स्टीमर उन पर झपट रहा था, तभी लहरों ने उसे जबरन मोड दिया। दो-तीन सप्ताह कुछ शांति से बीते और 30 सितम्बर को 'स्प्रे' ने भूमध्य रेखा को पार किया। 5 अक्तूबर को ब्राजील के बंदरगाह पेरनाम्बुको पर जोशुआ ने लगर डाला और अपने नाविक पत्रकार मित्र डा. पेरेरा के मेहमान बने तथा एक बार फिर 24 अक्तूबर को खाने-पीने का सामान व अन्य आवश्यक सामग्री लाद कर 'स्प्रे' ने समुद्र में तैरना शुरू कर दिया। अब जोशुआ की नाव 110 मील प्रति घंटे की रफ्तार से चल रही थी। रियोडीजिनेरियो में उन्हे अपने कुछ अन्य मित्रो से फिर उपहार मिले।

15 दिसम्बर को उरुग्वे तक मित्रो की शुभकामनाओं ने किसी संकट को 'स्प्रे' के पास नहीं फटकने दिया लेकिन जैसे ही उरुग्वे का किनारा दिखा, जोशुआ ने एक भारी गलती कर डाली। समुद्र में आते हुए तूफान से बचकर फौरन लंगर डालने के चक्कर में रेत के टीले और लहरो मे अंतर न कर पाए। चंद्रमा की रोशनी ने उन्हें और भी धोखा दिया। नाव रेत के टीले मे बुरी तरह धंस गई।

जोशुआ के बेफिक्रे मिजाज का अदाजा इससे लगाया जा सकता है कि दूसरे दिन रेत के टीले से गुजरने वाले नाविको ने उन्हें वहा आराम से सोता हुआ पाया। इन नाविकों ने कप्तान की नाव को रेत से मुक्त कराया। जोशुआ की नाव जहां फंसी थी, उस जगह को कास्टिलो कहते हैं। यह जगह उरुग्वे और ब्राजील को बांटने वाली रेखा से सात मील दक्षिण की ओर है।

जोशुआ ने नया साल ब्यूनस आयर्स में अपने पुराने मित्र मुलहल के घर पर मनाया। नए साल की खुशी ने यात्रा की थकान को उतारने मे मदद जरूर की लेकिन उससे आगे की यात्रा के भयानक खतरो के कम होने की कोई उम्मीद न थी। अभी उन्हे बर्बर जंगलियों, समुद्री जीव-जंतुओं और इन सबसे ऊपर पागल बना देने वाले दृष्टिभ्रमों का मुकाबला करना था।

जंगलियों को पहली टक्कर मे चतुराई से शिकस्त देने के बाद जोशुआ को उनका दो बार और मुकाबला करना पड़ा। दूसरी बार तो जगलियो ने उनका पीछा तब छोड़ा, जब वह खाने-पीने की चीजे उन्हें देने के लिए राजी हो गए। फिर भी उन्होंने बंदूक दिखाकर जंगलियों को अपनी नाव पर नही आने दिया। वे खाने-पीने की चीजें उनकी नाव पर फेंकते रहे। तीसरी बार उनकी रक्षा एक बार फिर प्रकृति ने की। जब जंगली अपने अभियान मे सफल होना ही चाहते थे,तभी हवा के तेज झोके ने जंगलियो की नावों को तितर-बितर कर दिया और 'स्प्रे' उनके घेरे से निकल भागी।

वर्षा, तूफान, आक्रामक लहरे और समुद्र शांत होने पर दृष्टिभ्रम। कभी जोशुआ को विशाल समुद्री पक्षी जहाज जैसे लगे और कभी सील मछलियां व्हेल जैसी। कभी धुंधलका सूखी जमीन का आभास देता। ऐसे में अगर अपनी इच्छा शक्ति

और चौकन्नेपन का इस्तेमाल न करते तो उनके किसी बड़ी दुर्घटना का शिकार होने की पूरी गुंजाइश थी।

तीन रात और तीन दिन तक चलने वाले तूफान की तेजी ने 'स्प्रे' को हार्न अंतरीप से बाहर धकेल दिया। जोशुआ ने जंगलियों के एक और हमले को झेला। इस बार फिर उनके सामने ब्लैक पैड्रो का दल था। लेकिन इस बार जोशुआ की रायफल काम आई। पैड्रो को गोली के भय से 'स्प्रे' पर कूदने का साहस न हुआ।

'स्प्रे' का भोजन के लालच में पीछा करती शार्क व्हेलो से भी कप्तान जोशुआ को लोहा लेना पडा। पिलर अंतरीप से आगे बढते हुए नीली पहाड़ियों के पास रहने वाले स्पेनिश और फ्रेंच बोलने वाले लोगों के अतिथि बनते हुए उन्होने प्रशांत महासागर मे प्रवेश किया।

16 जुलाई को सामोआ की राजधानी ओयेगा पहुंचने से कुछ दिन पहले एक रात को उनके तेज भाले ने एक व्हेल को छेद डाला,जो उनकी नाव को टक्कर मारकर उलट देना चाहती थी।

ओयेगा मे कप्तान को राजा के महल में दावत के लिए बुलाया गया, जिसके जवाब में जोशुआ ने राजा को अपनी नाव मे दावत दी। हालांकि दोनो दावतो के भोजन के स्तर में कोई मुकाबला नही था, फिर भी जोशुआ ने अपने मेहमानों की भरसक आवभगत की।

तूफानों और तेज हवाओ से टक्कर लेते हुए वह न्यूसाउथ वेल्स होते हुए न्यूकैसल पहुंचे। यह 42 दिन की यात्रा थी। सिडनी के बंदरगाह पर 'स्प्रे' कई हफ्ते अपना लगर डाले रही। जोशुआ से मिलने वालों का तांता लगा रहा। उन्हें अनगिनत दावतें दी गई। नाविक क्लबो की मानद सदस्यता भेट करके उन्हे सम्मानित किया गया। गर्मी का मौसम पलक झपकते बीत गया। दिसम्बर के पहले सप्ताह मे वह सीधे मारिशस (हिंद महासागर) होते हुए अपनी जन्मभूमि के लिए रवाना हो गए। वूनडुरो अंतरीप के तट पर खडे लोगों से मुबारकबाद का आदान-प्रदान करके जोशुआ ने बडा दिन मनाया।

आस्ट्रेलिया के उत्तर में खराब मौसम से बचने के लिए उन्होंने तस्मानिया का रास्ता पकड़ा। सोने की खानों के विख्यात इलाके गुजर कर जोशुआ जार्ज टाउन पहुंचे, जहां आस्ट्रेलिया की खोज में अंग्रेजो ने सबसे पहले कदम रखा था। जार्ज टाउन के वासियो ने जोशुआ के स्वागत मे एक हाल मे उनका भाषण रखा, जिसे सुनने के लिए दूर-दूर से श्रोता आए। आगे के पडाव डेवन पोर्ट की प्राकृतिक सुंदरता इतनी मोहक थी कि उसने एकबारगी जोशुआ के सैलानी मन को भी भटका दिया लेकिन रोमांच की ललक ने अंत में जीत हासिल की और 16 अप्रैल, सन् 1897 को जोशुआ की यात्रा पुनः प्रारंभ हुई।

सर्दियों में मौसम महीने भर साफ रहा। यात्रा मे कोई विघ्न नही आया। इसका लाभ उठाकर जोशुआ सागर यात्राओं की कहानियां पढते रहे। 26 मई की सुबह

ग्लाउसेस्टर द्वीप मे हुई। 31 मई को एण्डेवर नदी का दहाना मिला। वहा के समाचार पत्रों ने 'स्प्रे' को फुर्र से उडती हुई चिड़िया की संज्ञा दी। आस्ट्रेलिया के खोजी कप्तान कुक के नाम पर रखे कुक टाउन के छोटे से गिरजे मे एक बार फिर अपने सागर अनुभवो से जोशुआ ने आस्ट्रेलियावासियो को आनंदित किया। जोशुआ का यह भाषण 24 जून को हुआ जब महारानी विक्टोरिया की रजत जयंती धूमधाम से मनाई जा रही थी। इसी दिन वह हिंदमहासागर मे अपनी लम्बी यात्रा के लिए रवाना हुए। थर्सडे द्वीप से चलकर उनकी नाव ने कोरल सागर तथा टोरेस खाड़ी के खतरों को पार किया। क्रिसमस द्वीप से सौ मील दक्षिण-पश्चिम मे जोशुआ को काले बादल दिखे। उन्होंने नाव की गति तेज कर दी। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कप्तान कीलिंग द्वारा सन् 1609 में खोजे गए तथा उन्हीं के नाम पर अपना नाम पाने वाले कीलिंग द्वीप के नारियल उत्पादक किसानों व नाव निर्माताओं से भेंट करके जोशुआ ने अपनी नाव की मरम्मत कराई।

16 दिन बाद रॉडिग द्वीप के गवर्नर की शाही दावत कबूल करने के पश्चात् वह 19 सितम्बर को मारीशस पहुचे। इस बीच उन्होने आठ दिन आराम भी किया।

यहां पहुंचकर जोशुआ ने महसूस किया कि उनकी यात्रा का 90 प्रतिशत हिस्सा पूरा हो चुका है लेकिन फिर भी उन्हे लग रहा था कि जैसे अमेरिका अभी बहुत दूर है। मारीशस से न्यूपोर्ट तक की यात्रा मे जोशुआ को सबसे अविस्मरणीय क्षण सेण्ट हेलेना (जहां नेपोलियन बोनापार्ट को निर्वासन दिया गया था) मे बिताए गए दिन थे। द्वीप के गवर्नर ने उन्हे राजभवन में ठहराया। जोशुआ रात भर इस महल के एक कमरे में नेपोलियन के भूत की प्रतीक्षा करते रहे। द्वीप के लोगों का कहना था कि उस कमरे में नेपोलियन का भूत आता है। रात गुजर गई लेकिन जोशुआ की तमन्ना पूरी नहीं हुई। बाद में उन्होने लागवड नामक उस बंगले की सैर करके, जिसमें नेपोलियन को कैद किया गया था, संतोष किया।

टोबागों के मूंगे के पहाड़ो से बचते-बचते 'स्प्रे' ग्रेनाडा की तरफ बढती रही। ग्रेनाडा से सेण्ट अण्टीगुआ पहुंचने पर जोशुआ का वहा के निवासियों ने भव्य स्वागत किया।

5 जून को 'स्प्रे' खुशी से उछलती हुई अपनी अंतिम मंजिल की ओर बढ रही थी। अचानक कप्तान जोशुआ को अपनी लम्बी यात्रा का अंतिम अनुभव हुआ। उनकी नाव अश्व अक्षाश में पहुंच गई थी, जिससे हवा के अभाव के कारण उनकी नाव का पाल ढीला होकर सिकुड़ गया लेकिन थोड़ी ही देर में हवा फिर चलने लगी और पाल ठीक हो गया। 'ससार' की 'परिक्रमा खत्म हो गयी ।

14 नवम्बर सन् 1909 को कप्तान जोशुआ ने एक और रोमांचक यात्रा प्रारंभ की लेकिन जीवन भर सागर को पराजित करते रहने वाला यह महानाविक इस बार सफल नहीं हो सका। जोशुआ हमेशा की तरह स्वागत करती आखो के संतोष तथा हिलते हुए रुमालों के रंगीन उछाह के लिए वापिस नहीं लौटे। वे उन्हीं लहरों मे खो गए, जो उनका जीवन थीं।

जासूसों के शिकंजे में डा सुन यात सेन

डा. सुन यात सेन को सारी दुनिया चीन में सामंतवाद का खात्मा करके उदार प्रजातंत्र की स्थापना करने वाले एक महान् नेता के रूप में जानती है। डा. सुन यात सेन को अपने लक्ष्य में सफलता प्राप्त करने के लिए कई बार मौत से जूझना पड़ा। उन्हें युवावस्था में ही चीन से भाग कर लंदन आना पड़ा। लंदन में भी चीनी सम्राट के क्रूर गुप्तचर उनका पीछा करते रहे। उन्हें अंततः गिरफ्तार कर ही लिया गया। चीनी जासूस, इतिहास की गति मोड़ देने वाले इस महानायक को फांसी देने के लिए सम्राट के सामने पेश करना चाहते थे लेकिन उन दिनों सुन वेन के नाम से विख्यात चीनी जनता के इस नेता ने उनके इस षड्यंत्र को छिन्न-भिन्न कर दिखाया।

डा. सुन और चीनी जासूसों के बीच लंदन की धरती पर हुए इस मुकाबले की कहानी में सबसे महत्वपूर्ण बात है—निराशा के अंधकार में भी लोकतंत्र की जीत में प्रबल विश्वास रखने वाले डा. सुन का संघर्ष।

3
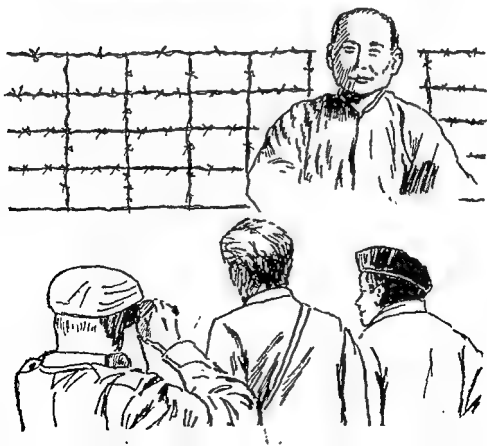
जैसे ही सुन वेन नामक उस चीनी युवक ने गिरजाघर जाने के लिए लंदन की वह सड़क पार की—उसके पीछे चलने वाले चीनी ने, जो परम्परागत लबादा पहने था, उसे रोक कर शुद्ध अंग्रेजी में उसका परिचय पूछा। कुछ ही क्षणो में दोनों अंग्रेजी का सहारा छोड़कर कैंटनी चीनी मे बात करने लगे। अब दोनों मिलकर गिरजाघर की ओर बढ़ रहे थे। लबादेवाला चीनी उस युवक के बाई ओर चल रहा था। थोडी दूर चलने के बाद ही एक और वैसा ही लबादा पहने दूसरा चीनी उस युवक के दाईं ओर चलने लगा। नया चीनी भी सुन वेन से मीठी-मीठी बाते कर रहा था। उसने तो सुन वेन को अपने कमरे पर चल कर चाय की दावत भी दे डाली लेकिन सुन वेन ने नम्रता से यह प्रस्ताव ठुकरा दिया क्योंकि उसे जल्दी ही गिरजाघर पहुच कर अपने अध्यापक कैण्टली और उनकी पत्नी से मिलना था। तभी न जाने कहां से एक तीसरा चीनी और आ टपका, जिसके चेहरे से पाशविकता साफ-साफ टपक रही थी। उसके आते ही बाकी दोनो चीनी भी नम्रता का मुखौटा एक तरफ फेक कर अपनी असलियत पर उतर आए। तीनो ने सुन वेन को एक झटके से दबोच लिया और देखते ही देखते 49, पोर्टलेण्ड प्लेस की इमारत के एक कमरे में उस युवक को कैद कर दिया गया। यह चीनी दूतावास की इमारत थी। उन दिनों चीन पर मंचू राजवंश का राज्य था। युवक सुन वेन की सम्राट के चीनी जासूसों को पिछले दस दिनों से तलाश थी।

□ □ □

आखिर वह युवक था कौन? चीनी जासूस उसे क्यो तलाश रहे थे? चीनी दूतावास के उस जेलनुमा कमरे में थोड़ी ही देर बाद सुन वेन की भेंट दूतावास के कानूनी सलाहकार बैरिस्टर सर हालीडे से हुई, जिन्होंने उसे आगाह किया कि अब वह चीनी क्षेत्र और चीनी कानून के अधीन है।

सर हालीडे ने उस युवक पर आरोप लगाया कि वह चीन में सम्राट के विरुद्ध सुधार की अपीलें, पर्चे और घोषणापत्र लिखता रहा है। वह गुप्तरूप से सम्राट की पुलिस की आंखों मे धूल झोक कर 'मैजेस्टिक' नामक जहाज से लंदन आया है। और यह कि उसने एक ऐसा मांग-पत्र तैयार किया है, जिसमें चीनी जनता से सम्राट के शासन के विरुद्ध आंदोलन करने का आव्हान किया गया है। उसे तब तक दूतावास की हिरासत में रखा जाएगा, जब तक सम्राट उसकी किस्मत का फैसला नहीं कर देते।

सुन वेन ने सर हालीडे के किसी भी आरोप को स्वीकार करने से इंकार कर दिया। यहां तक कि उसने अपना नाम सुन वेन भी स्वीकार नहीं किया और अपनी गिरफ्तारी की सूचना अपने अंग्रेज मित्रो को देने की अनुमति मांगी। हालीडे ने उसे यह अनुमति तो न दी, हां यह प्रस्ताव अवश्य दिया कि वह चाहे तो अपने मकान-मालिक के पास खत लिख कर अपने इस्तेमाल की चीजें मंगवा सकता है। इस प्रस्ताव को मानने से सुन वेन ने इकार कर दिया क्योंकि उसे इसमें उन्हें हालीडे की कोई चाल लगी।

असलियत यह थी कि हालीडे ने जो आरोप लगाए थे, वे सही थे। सुन वेन मंचू सम्राट की नजर मे अपराधी था लेकिन अपनी निगाहो में उसने चीनी देशवासियों के प्रति अपने कर्त्तव्य की पूर्ति ही की थी। गिरफ्तारी से वह न तो घबराया था और न ही उसके मन में तनिक भी भय जागा। सम्राट की पुलिस से बचने के लिए वह मकाओ, हांगकाग, सिंगापुर, योकोहामा, बंटाविया, होनोलूलू और सैनफ्रांसिस्को होता हुआ लंदन आया था। लंदन आकर वह हांगकांग के अपने पूर्व शिक्षक कैण्टली तथा मेनसन से मिला। उन्हीं की मदद से उसने होटल छोडकर एक कमरा किराए पर ले लिया। उसके अध्यापकों ने उसे पहले ही सलाह दी थी कि उसे चीनी दूतावास से सतर्क रहना चाहिए। सुन वेन का ख्याल यह था कि लंदन में ब्रिटिश कानून के तहत चीनी दूतावास उसका कुछ नहीं बिगाड सकता। अंततः उसे अपनी लापरवाही का खामियाजा भुगतना पड़ा था। लदन मे सम्राट की कैद में उसका ग्यारहवां दिन बीत रहा था।

☐ ☐ ☐

हालीडे के जाने के थोडी ही देर बाद एक बढ़ई कमरे के सलाखों वाले दरवाजे पर ठोक-पीट कर डबल ताला लगा गया और साथ में दो पहरेदार तैनात कर दिए गए। इन पहरेदारों से बात करने की सुन वेन ने काफी कोशिश की लेकिन उन्होंने उसका जवाब देने के बजाय उसकी तलाशी ले डाली तथा उसका कलम व चाकू भी छीन लिया। गनीमत यह रही कि सुन वेन के पास जो नोटों की गड्डी थी, उस पर उनकी नजर नहीं पडी। शाम को दो अंग्रेज नौकर कमरे की सफाई कर गए। उन्होने भी सुन वेन से कोई बात नहीं की। सुन वेन पूरी रात जागता रहा।

दूसरे दिन दूतावास के प्रथम सचिव तेंग ने सुन वेन से मुलाकात की। तेग ने कई तरीको से सुन वेन को समझाने की कोशिश की कि वह अपने अपराध स्वीकार कर ले लेकिन सुन वेन दृढता से इकार करता रहा और लगातार इस बात मे विश्वास प्रगट करता रहा कि दूतावास के लोग उसका कुछ नही बिगाड़ सकते क्योंकि वह बीजिंग या शंघाई मे नहीं, वरन् लंदन में है, जहां सामंतशाही नही, लोकतंत्र है। इस पर तेंग चिढ़ गया और व्यंग्य करते हुए बोला कि चीन मे मौत सुन वेन की प्रतीक्षा कर रही है। अगर सम्राट ने उसे जिंदा चीन भेजने का आदेश न दिया होता तो दूतावास की कोठरी मे ही उसका काम तमाम कर दिया जाता।

यह सुनकर सुन वेन ने चालाकी से तेग को चिढ़ाने के लिए पुनः चुनौती दे डाली कि उसे चीन भेजा जाना असंभव है क्योंकि जैसे ही लंदन के अखबारों अथवा सरकार को इसका पता चलेगा, वे तुरंत उसे आजाद करवा देंगे।

सुन वेन की चाल काम कर गई। अपनी योजना की त्रुटिहीनता के प्रति पूर्णरूप से आश्वस्त तेग ने तिलमिला कर सुन को सूचना दी कि उसे जिस ग्लेन लाइन स्टीमर से ब्रिटिश सरकार की अनुमति के बिना अगले हफ्ते गुप्तरूप से हांगकाग भेजा जाएगा, हांगकांग से कुछ पहले ही एक तोप वाली नाव उसे लेकर कैंटन रवाना हो जाएगी, जहां उसे मुकद्दमे की खानापूरी करके मृत्यु-दण्ड दे दिया जाएगा। स्टीमर में उसे लगातार हथकड़ियों में जकड़कर रखा जाएगा। किसी को भनक भी नहीं लगेगी और सारा काम गोपनीयता और सफाई से पूरा कर दिया जाएगा। स्टीमर का मालिक सर हालीडे का दोस्त है और चीन से व्यापार करने का मौका प्राप्त करना चाहता है, इसलिए वह पूरी गोपनीयता भी बरतेगा।

तेंग के साथ हुए वार्तालाप मे सुन वेन ने अपनी बौद्धिक क्षमता से सारा षड्यंत्र जान लिया। यह मन ही मन चिंतित हो उठा। उसने हर हालत में कैद से भाग निकलने की ठान ली। इसलिए तेंग को डराने के लिए उसने उसे धमकी दी कि अगर ब्रिटिश सरकार को इस साजिश का पता चल गया तो दूतावास के हर व्यक्ति को लंदन से अपना बिस्तर गोल करना पडेगा। तब तेंग को भी चीन जाना पड़ेगा और तब क्वांग तुंग प्रांत के लोग उसकी मौत का तेंग से बदला लेगे।

संयोग से तेंग भी क्वांग तुंग का था। इस धमकी ने कुछ असर किया। तेग का स्वर थोड़ा-सा नर्म पडा। उसने फौरन रुख बदलकर सुन वेन को सलाह दी कि यदि सुन कैण्टन के आंदोलन से अपना संबंध तोड ले तथा यह कह दे कि आंदोलनकारियों ने उसे अपने जाल में फंसा लिया था और यह कि वह स्वेच्छा से दूतावास में अपने मामले में बातचीत करने आया था, तो उसे माफी मिल सकती है।

तेग के इस घटिया सुझाव में सुन ने कोई दिलचस्पी नहीं दिखाई।

□ □ □

पहले सुन वेन ने दोनों अंग्रेज नौकरों को घूस देकर अपने अध्यापक मित्र के पास संदेश ले जाने के लिए राजी करने की कोशिश की। इसमे असफलता मिलने पर सुन वेन ने खिड़कियों के रास्ते छोटे-छोटे कागज के टुकड़ो पर अपना हाल लिखकर बाहर फेंका। जब उसने देखा कि वे टुकडे छत की नाली मे गिर गए हैं, तो उसने तांबे के सिक्कों में पर्चे लपेट कर फेंके। एक टुकड़ा पड़ोस के मकान के पिछवाड़े बगीचे में गिरा। दूसरा एक अन्य मकान की छत पर तथा तीसरा सड़क पर जा गिरा, जिसे दूतावास के पहरेदारो ने उठा लिया। थोड़ी देर बाद मजदूरों व मिस्त्री ने आकर कोठरी की सारी खिड़किया बंद कर दी।

सुन वेन के सामने अब एकमात्र लेकिन क्षीण आशा के रूप में वे दो अंग्रेज नौकर बचे थे, जो प्रतिदिन कोठरी की सफाई करने, खाना देने तथा आग जलाने आते थे।

उनमें एक कम उम्र का था, जिसके चेहरे पर सुन ने अपने लिए कुछ सहानुभूति के भाव देखे थे।

मौका देखकर सुन ने उस अंग्रेज नौकर को बताया कि वह एक राजनीतिक शरणार्थी है। चीन में रहता है तथा इंग्लैण्ड में शरण लेने के लिए आया है। तुर्की का सुल्तान जिस तरह आर्मीनिया के ईसाइयों को कत्ल कर रहा है, उसी तरह चीन का सम्राट भी उसका वध करवा देना चाहता है क्योंकि वह भी ईसाई है तथा चीन के एक ऐसे राजनीतिक दल से संबंधित है, जो राजशाही को खत्म करके वहां भी इंग्लैण्ड जैसा ही लोकतंत्र स्थापित करना चाहता है। उसे धोखे से कैद किया गया है तथा उसे बिना ब्रिटिश सरकार की अनुमति के चीन भेजा जाएगा और वहां मुकद्दमे का नाटक करके उसे मृत्यु दण्ड दे दिया जाएगा।

सुन ने उस अंग्रेज से निवेदन किया कि यदि वह अधिकारियों को सुन के बारे में सूचित कर दे तो उसकी जान बच सकती है।

सुन ने ईसाई होने के नाते भी उस अंग्रेज से मदद करने का निवेदन किया। पहले दिन अंग्रेज ने सुन का जो जवाब दिया, उसमें मदद मिलने की कोई झलक न थी। सुबह नाश्ता लाते समय वह कुछ न बोला और सुन से नजरें चुराता रहा और शाम के समय वह आग जलाने के लिए लाए गए कोयले की टोकरी में संदेश रख गया। उस संदेश के पुर्जे को सुन ने कांपते हाथों से उठाया और धड़कते दिल से पढ़ा। उसमें लिखा था—"मैं आपका खत आपके किसी दोस्त तक पहुचाने के लिए तैयार हूं।"

शनिवार की शाम को सुन के पूर्व अध्यापक डा. कैण्टली के पास एक गंदे और पुराने विजिटिंग कार्ड पर लिखा हुआ सुन का संदेश पहुंच गया। उसे पढ़कर डा कैण्टली बेचैन हो गए। वे तुरंत सर हालीडे की कोठी पहुंचे लेकिन वहां ताला पड़ा हुआ था। पुलिस स्टेशन जाने पर उन्हें स्काटलैण्ड यार्ड जाने की सलाह मिली। स्काटलैण्ड यार्ड के संबंधित अधिकारी को डा. कैण्टली द्वारा सुनाई गई कहानी इतनी विचित्र लगी कि उसे इस पर विश्वास ही नही किया। उसने बड़े अफसरों तक बात पहुचाने का बहाना करके कैण्टली को विदा कर दिया।

सुबह एक मित्र से राय लेकर कि उन्हें चीनी दूतावास के दरवाजे भी खटखटाने चाहिए, जैसे ही कैण्टली घर लौटे, उन्हें उसी अंग्रेज नौकर ने सूचना दी कि सर हालीडे लंदन मे ही हैं और रोज चीनी दूतावास आते हैं। मगलवार तक कैदी को जरूर लंदन से रवाना कर दिया जाएगा।

जाहिर था कि पूरी साजिश में सर हालीडे का भी हाथ है। अब कैण्टली के पास सुन को बचाने के लिए मात्र 14 घण्टे थे। वे फौरन डा. मेनसन के पास हुंचे। सुन के दोनों पूर्व अध्यापक एक बार फिर स्काटलैण्ड यार्ड गए। ड्यूटी अफसर ने उन्हें टका-सा जवाब दे दिया—"आप शनिवार को भी यहा आए थे। तब से आज तक हमे कोई तथ्य नही मिला है। हम आपकी कहानी पर कैसे यकीन करें?" विवश

होकर कैण्टली सीधे विदेश विभाग पहुंचे, पर वहां भी संबंधित अधिकारी ने रविवार का बहाना बनाकर उन्हें टाल दिया। अब कोई चारा न बचा था। अंतिम कोशिश के रूप में कैण्टली ने मैनसन को चीनी दूतावास भेजा। योजना यह थी कि मैनसन दूतावास में सुन वेन के बारे में पूछताछ करेंगे। यदि वे भी वापिस न लौटे तो कैण्टली फौरन स्काटलैण्ड यार्ड सूचना देने जाएंगे।

मेनसन की भेंट दूतावास में तेंग से हुई। मेनसन ने उससे पूछा कि सुन वेन नाम का जो युवक दूतावास मे कैद है, उससे वे मिलना चाहते हैं। सुन वेन का नाम सुनते ही तेंग के माथे पर बल पड गए और उसने इस नाम के किसी युवक से परिचित होने से ही इनकार कर दिया। मेनसन ने अपनी बात पर जोर दिया और तेंग को धमकाया कि स्काटलैण्ड यार्ड तथा विदेश विभाग को भी इस बात का पता है। परंतु तेंग ने सामान्य स्वर में बात करते हुए डा. मेनसन को यकीन दिला दिया कि उनके साथ जरूर किसी ने मजाक किया है। मेनसन ने जब अपनी शंका कैण्टली पर जाहिर की तो कैण्टली सुन की प्राण रक्षा के विषय में और ज्यादा चिंतित हो उठे। उन्होने एक निजी जासूस किराए पर लिया और दूतावास की निगरानी करने पर लगा दिया। वे 'दि टाईम्स' जैसे लोकप्रिय समाचार पत्र के कार्यालय में भी गए और पूरी कहानी कह सुनाई लेकिन पत्रकारो ने भी उनके बयान पर विश्वास न किया। सुन की प्राणरक्षा के लिए बेचैन डा. कैण्टली ने अपने प्राइवेट जासूस के साथ स्वयं पूरी रात जाग कर दूतावास की निगरानी की।

सुबह वे पुनः विदेश विभाग जा पहुंचे। इस बार वे वहां के अधिकारियों को समझाने मे सफल हो गए। विदेश विभाग ने उनका हलाफिया बयान लिया कि एक चीनी तरुण चीनी दूतावास मे अवैध ढंग से कैद है। प्रशासन का चक्का घूमने लगा। विदेश विभाग ने स्काटलैण्ड यार्ड को मामले में दिलचस्पी लेने पर मजबूर कर दिया। स्काटलैण्ड यार्ड के जासूस शाम तक खबर ले आए कि ग्लेन लाइन का एक स्टीमर मंगलवार को माल के अलावा एक अज्ञात मुसाफिर को लेकर रवाना होगा, जिसके नाम के बदले सिर्फ चीनी नागरिक लिखा गया है।

अगले दिन लंदन की सर्वोच्च अदालत मे अज्ञात कैदी की ओर से एक बद प्रत्यक्षीकरण याचिका दायर की गई, जिसे अदालत ने खारिज कर दिया। अब तक अखबारों को काफी मसाला मिल चुका था। 'ग्लोब' समाचार पत्र ने डा. कैण्टली से भेंटवार्ता प्रकाशित की। राजनीतिक क्षेत्रो मे हलचल फैल गई। विदेशी संवाददाताओं ने चीनी दूतावास की पोलें खोलना शुरू कर दीं। 'डेली मेल' ने सर हालीडे की भूमिका का खुलासा कर दिया। कुछ अन्य समाचारपत्रो ने चीनी दूतावास की भर्त्सना करते हुए अग्रलेख लिखे। स्काटलैण्ड यार्ड ने दूतावास के चारों ओर अपना जाल फैला दिया। बंदरगाह के अधिकारियों को सतर्क कर दिया गया। ब्रिटेन के विदेश मंत्री ने चीनी दूतावास को एक विरोध पत्र भेज दिया।

□ □ □

दूतावास का एक पहरेदार सुन वेन के पास आया और उसे अपने साथ चलने के लिए कहा। सुन को लगा कि उसे चीन भेजने के लिए ले जाया जा रहा है। उसे दूतावास के स्वागत कक्ष में ले जाया गया, जहां विदेश विभाग के अधिकारी, डा. कैण्टली तथा स्काटलैण्ड यार्ड के अधिकारी मौजूद थे। सुन वेन आजाद हो चुका था।

जो सुन वेन छुपता हुआ इंग्लैण्ड आया था, वह सारे विश्व के आकर्षण का केन्द्र बन चुका था। सुन ने पूरे आत्मविश्वास के साथ पत्रकारों के सवालों का जवाब दिया लेकिन एक सवाल वह हर बार टाल गया कि डा. कैण्टली तक सूचना कैसे पहुची। भला वह उस अंग्रेज नौकर का नाम बताकर अपनी कृतज्ञता को कैसे कलंकित करता?

यही युवक सुन वेन आगे चलकर डा. सुन यात सेन के नाम से विख्यात हुआ। डा. सुन के नेतृत्व में चीन में मचू वंश के साम्राज्य का खात्मा हुआ तथा बाद मे मजदूरों-किसानों की वर्तमान हुकूमत का पथ प्रशस्त हुआ। डा. सुन यात सेन को चीन की लगभग 1 अरब जनता आज भी अपना राष्ट्रपिता मानती है।

● ●

नाजी जनरल का अपहरण

उन दो ब्रिटिश सैनिक अधिकारियों ने एक नाजी जनरल के अपहरण की योजना बनाई। उनका उद्देश्य था—नाजी कब्जे में रह रही यूरोपीय जनता के सामने एक ऐसी मिसाल पेश करना, जिससे उसे स्वतंत्रता के पक्ष में संघर्ष करने का मौका मिल सके।

यह कोई आसान काम नहीं था। मेजर पैट्रिक, मेजर मोस तथा छापामारों की एक टोली ने जनरल क्राइपे का अपहरण तो कर लिया पर उन्हें नाजी कब्जे के क्षेत्र से निकाल कर ब्रिटिश प्रभुत्व वाले क्षेत्र में पहुंचाना एक विकट समस्या थी। इसके लिए उन्हें सचमुच लोहे के चने चबाने पड़े।

यह दुस्साहस और कूटनीति की एक ऐसी गाथा है, जिसे असफल करने के लिए नाजियों को पूरे गांव के गांव उड़ा देने की धमकी देनी पड़ी और द्वितीय विश्वयुद्ध की सम्पूर्ण अवधि में की गई सबसे जबरदस्त खोज चलानी पड़ी।

4
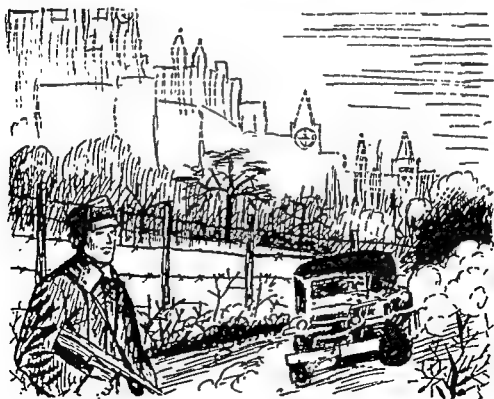
यूनान के नगर हेराक्लियन की सड़कें नाजी जर्मनी के सैनिको से भरी हुई थी। अभी-अभी सिनेमा छूटा था। इन जर्मन सैनिकों की भीड़ के बीच एक फौजी कार रास्ता बनाती हुई चली जा रही थी। जर्मन सैनिक घूम कर इस कार को देखते और उसमें बैठे हुए मेजर जनरल क्राइपे को सलाम ठोकते। जनरल क्राइपे के पथरीले चेहरे पर कोई भाव तो नहीं आ रहा था लेकिन उनका सिर हिलकर सैनिकों की सलामी का जवाब जरूर दे रहा था। जनरल क्राइपे कोई छोटी-मोटी हस्ती न थे। वह हिटलर की प्रतिष्ठित 'व्हेरमाख्त' (जनरलों की परिषद) के सदस्य थे। उन्हे *लेनिनग्राद का हीरो कहा जाता था।* इस समय क्रेटे के यूनानी द्वीप पर मौजूद 22 हजार जर्मन सैनिकों की कमान उन्हीं के हाथों मे थी। कुल मिलाकर भूमध्यसागर मे जर्मन सैनिक योजना उन्हीं के आस-पास घूमती थी। जनरल क्राइपे की गाड़ी धीरे-धीरे चलती हुई शहर से बाहर निकल गई।

लेकिन यह क्या? अगले दिन दोपहर के बाद ही आसमान जर्मन विमानों से भर गया। इन विमानों में बैठे खोजी दल दूरबीन से जमीन के चप्पे-चप्पे का निरीक्षण कर रहे थे। *विमानों से कुछ पर्चे गिराए गए, जिनमें लिखा हुआ था*—"अगर जनरल क्राइपे को तीन दिन के अदर न लौटाया गया तो हैराक्लियन जिले के सभी विद्रोही ग्राम नष्ट कर दिए जाएंगे।" अपनी इस धमकी को और गम्भीर साबित करने के लिए जर्मनों ने अनोइया नामक 900 वर्ष पुराने कस्बे को डायनामाइट से उड़ा दिया तथा बची-खुची इमारतो को बमबारी करके तबाह कर दिया।

दरअसल जनरल क्राइपे का अपहरण कर लिया गया था। जाहिर है कि एक दिन पहले जर्मन सैनिक जिस व्यक्ति को जनरल समझ कर सलामी दे रहे थे, वह व्यक्ति जनरल नही, बल्कि कोई और था। असली जर्मन जनरल तो कार के पिछवाड़े बंधा पड़ा था।

नाजी जनरल के अपहरण की यह कहानी द्वितीय विश्वयुद्ध की तमाम रोमांचकारी कहानियों से भी कहीं अधिक सनसनीखेज है। इस कहानी के दो नायक थे—मेजर पैट्रिक और मेजर मोस, जिनके दिमाग से जर्मनो पर जबरदस्त चोट करने वाली इस योजना ने जन्म लिया था।

□ □ □

मेजर पैट्रिक व मेजर मोस ब्रिटिश सेना के अफसर थे। सन् 1944 में लम्बे समय तक मोर्चे पर रहने के बाद वे काहिरा मे अपनी छुट्टिया गुजार रहे थे कि अचानक

एक कहवाखाने में बैठे-बैठे उनके दिमाग में यह शैतानी योजना आई। किसी महत्वपूर्ण नाजी जनरल को अगवा करने की उनकी साजिश काहिरा तथा लंदन के अंग्रेज फौज अधिकारियों को काफी पसंद आई क्योंकि इससे नाजियों के अधीन रह रहे लाखों-लाख यूरोपवासियों को नाजियो पर हंसने का मौका मिलता। विद्रोही नागरिको की यही हंसी उनकी आशा और स्वतंत्रता की अभिलाषा में और भी वृद्धि करती।

इस तरह फरवरी की एक रात क्रेटे की पहाड़ियों में ब्रिटिश हवाई-जहाज से मेजर पैट्रिक गुरिल्ला सैनिकों के शरणस्थल के पास पैराशूट द्वारा उतरा। पैट्रिक एक सुंदर आयरिश युवक था। यह यूनानी भाषा का भी अच्छा जानकार था। पर जैसे ही मोस के उतरने का समय आया, विमान को अचानक कोहरे ने ढक लिया। अगले छः सप्ताह तक मोस पैराशूट से उतरने की कोशिश करता रहा। उसे इस काम में लगातार 10 बार असफलता मिली। हर बार कोहरा उसके रास्ते में बाधा बन जाता था। अत मे वह समुद्र के रास्ते जर्मन चौकियो को चकमा देकर नाव से किनारे पहुचा और अंधेरे में ही गुरिल्ला अड्डे की ओर चल पड़ा। मोस और उसके साथी सैनिक दल को दिन के समय गांव वालों के पास छिपना पड़ता। वे लोग चुपचाप जर्मन बूटो की खट-खट सुनते रहते। रात मे उन्हे अंधेरे के कारण पत्थरों में इतनी ठोकरें खानी पडती कि उनके शरीर में नीले-काले छाले पड़ जाते। धीरे-धीरे मोस अपने दल के साथ अपनी मंजिल पर जा पहुंचा।

वह वेश बदलकर क्रेट की राजधानी हेराक्लियन गया और जनरल क्राइपे के निवास के पास रहने वाले 'मिकी' नामक ब्रिटिश छापामार के पास पहुंचा। वहीं मोस की मुलाकात मेजर पैट्रिक से हो गई।

दोनो युवा मेजरो ने मिकी के घर से जनरल क्राइपे के किले जैसे घर का निरीक्षण करके यह महसूस किया कि जनरल का अपहरण करने के लिए उसके घर पर अचानक छापा मारने का तरीका किसी कीमत पर सफल नही हो सकता। जनरल का घर तीन कतारो मे कटीले तारो से घिरा हुआ था, जिनमें रात-दिन बिजली का करंट दौड़ता रहता था। खतरनाक कुत्तो और चुस्त सशस्त्र सैनिकों का पहरा तो था ही।

पैट्रिक तथा मोस ने मिकी के घर की खिड़की से जनरल क्राइपे की दिनचर्या का ध्यान से निरीक्षण किया। हर सुबह जनरल अपने किले से 5 मील दूर प्रधान सैनिक कार्यालय मे जाता और शाम को अंधेरा होने पर लौटता। जिस सड़क से जनरल की कार रोज आती जाती थी, उस सडक का अध्ययन करने पर पता चला कि सड़क पर एक ऐसा मोड मौजूद है, जहा कार अवश्य धीमी करनी पडती है। जनरल के अपहरण के लिए यही मोड़ चुना गया।

पूरी कार्यवाही के लिए 12 व्यक्तियों की आवश्यकता थी। छापामारों को सड़क के दोनों ओर खाइयों में छिपे रहना था तथा 4 को कुछ पहले तैनात रहना था, ताकि वे

जनरल के आने की सूचना दे दें। मोस तथा पैट्रिक को जर्मन सैनिक वर्दी में सडक पर हाथ देकर जनरल की कार रुकवानी थी। ब्रिटिश छापामारों ने किसी तरह दोनों मेजरों के लिए जर्मन सैनिक वर्दियो का प्रबंध किया। 'मिकी' की पत्नी ने दोनों की कमीजो में जहर की गोलियां सी दीं, ताकि वे पकडे जाने पर आत्महत्या कर सकें।

इस बीच जर्मन खुफिया विभाग को किसी प्रकार ब्रिटिश जासूस दल के आने की भनक मिल चुकी थी। उसे यह भी पता लग गया कि यह दल रोज रात को अपने छिपने का स्थान बदल देता है। अपहरणकर्ताओ.के दल की खोज शुरू हो गई। कई बार उन्हें जोखिम भरी परिस्थितियों से गुजरना पडा। एक बार तो ऐसा हुआ कि ब्रिटिश दल एक अटारी मे बैठा हुआ था तथा नीचे दरवाजे पर जर्मन सैनिक दस्तक देते हुए खाना मांग रहे थे।

23 अप्रैल, सन् 1944 तक सारी तैयारिया पूरी हो गईं। जिस रात अपहरण की कार्रवाई होनी थी, उसी दिन जनरल क्राइपे ने संयोग से अपनी दिनचर्या बदल दी। इसके बाद तीन दिन तक क्राइपे अंधेरा होने से पहले ही अपने घर लौटते रहे। यह तब्दीली देखकर किसी को भी ऐसा लग सकता था कि गोया जनरल को साजिश की गंध लग चुकी थी।

अपहरणकर्ता दल ने चौथा दिन कार्रवाई के लिए तय किया। 12 छापामार अपने-अपने निर्धारित स्थानों पर छिप गए। एक घण्टे तक प्रतीक्षा करनी पडी। अंत मे जनरल की कार आने की सूचना मे आगे तैनात चार छापामारो की फ्लैश लाइट जल उठी।

तीखे मोड़ पर जैसे ही जनरल की गाड़ी धीमी हुई, पैट्रिक और मोस ने, जो जर्मन वर्दी पहने हुए थे, गाडी रोकने के लिए इशारा किया। गाडी रुकते ही पैट्रिक ने दायीं ओर का दरवाजा खोला और जनरल क्राइपे को बाहर खींच लिया। दोनों सड़क पर लुढ़कने लगे। जनरल तेजी से घूसे और लाते चला रहा था। तभी तीन और छापामारों ने उसे दबोच कर उसके हाथ बाध दिए और उसे गाड़ी के पीछे के हिस्से में फेंक दिया। उधर मोस गाडी के ड्राइवर की गुद्दी पर पिस्तौल के बट से वार कर उसे बेहोश कर चुका था। दरअसल ड्राइवर पिस्तौल निकाल कर बहादुरी दिखाने के चक्कर में था। ड्राइवर के शरीर को एक गड्ढे मे फेक दिया गया। अब स्थिति यह थी कि पैट्रिक जनरल की जगह टोप पहने हुए बैठा था। मोस गाडी चला रहा था तथा दो गुरिल्ले जनरल को अपनी गिरफ्त मे लिए हुए पीछे बैठे थे। जैसे ही जर्मन नियंत्रण चौकी की लाल बत्ती दिखी, एक गुरिल्ले ने अपना खतरनाक चाकू म्यान से निकाला और जनरल की गर्दन पर रख दिया, ताकि जनरल चिल्लाकर मदद मागने की जुर्रत न कर सके। नियत्रण चौकी के सिपाहियो ने जैसे ही कार पर लगा झण्डा देखा, उन्होंने कार को गुजरने के लिए जगह दे दी।

कार जैसे ही जनरल क्राइपे के घर के सामने पहुंची, घर के दरवाजे खुल गए तथा संतरी अटैंशन हो गए। मोस ने हार्न बजाया और जनरल का अभिनय कर रहे

पैट्रिक ने इशारे से बताया कि वे अभी अंदर नहीं जाएंगे। इसके बाद गाड़ी फिर चल पडी।

अपहरणकर्त्ताओं को 22 जर्मन नियंत्रण चौकियां पार करनी पडीं। अंत में जब सिनेमा देखकर छूटे हुए जर्मन सैनिकों की भीड में पैट्रिक जनरल के रूप में सलाम का उत्तर देता हुआ सफलतापूर्वक गाड़ी को शहर के बाहर निकाल लाया, तो छापामारों की जान मे जान आई। वे खुशी से भर कर काहिरा पहुंच कर जश्न मनाने की बाते सोचने लगे। उनकी यह खुशी क्षणिक थी क्योंकि काहिरा अभी बहुत दूर था और उन्हे मालूम था कि कुछ ही देर में जनरल क्राइपे की तलाश मे 35 मील चौडे और 165 मील लम्बे द्वीप का चप्पा-चप्पा छान मारा जाएगा।

☐ ☐ ☐

हर रात अपहरणकर्त्ता पूर्व और दक्षिण की तरफ भागते। जनरल क्राइपे को भी उनके साथ भागना पड रहा था। अपनी दिक्कततलब स्थिति को जनरल ने बिना किसी शिकायत के स्वीकार कर लिया और अपने अच्छे मिजाज का परिचय दिया। हां, कभी-कभी जनरल को अपनी बहनों की चिंता अवश्य घेर लेती थी क्योंकि उनके पालन-पोषण का जिम्मा उन्हीं पर था। जनरल क्राइपे अभी तक कुंआरे ही थे। उनकी चिंता का एक विशेष कारण था। जैसे ही कोई जर्मन सैनिक शत्रु द्वारा कैद किया जाता था, वैसे ही उसकी सभी सुविधाएं बंद कर दी जाती थीं।

इधर पैट्रिक और मोस की चिंता इसलिए बढ रही थी क्योंकि वे उस रेडियो ऑपरेटर से सम्पर्क नही कर पा रहे थे, जो काहिरा से उनके पलायन के लिए जहाज के बदोबस्त को अंतिम रूप से पुष्ट करने वाला था। एक रात एक गुरिल्ला शरणस्थल में पैट्रिक और मोस ने ट्रांसमीटर पर उस अंग्रेज का स्वर सुना, जिसकी उन्हे तलाश थी। तभी ट्रासमीटर मे खराबी आ गई और वे अपना संदेश भेजने में असफल हो गए।

शुरू मे किस्मत ने उनका साथ दिया था लेकिन अब वह उनके खिलाफ लग रही थी। उन्होंने दो अन्य रेडियो ऑपरेटरों के लिए आदमी दौडाए ताकि उनके द्वारा संदेश भेजा जा सके, लेकिन वे आपरेटर बहुत दूर थे। उधर जर्मन जनरल क्राइपे को तलाश करने के लिए एक जबर्दस्त अभियान की तैयारी कर चुके थे।

इसी तरह की एक निराश दोपहर को उन्हे संदेश मिला कि एक ट्रक जर्मन सैनिक उस पहाड़ी को घेर लेने की तैयारी कर रहे हैं, जिस पर वे लोग छिपे हुए हैं। अब उन्हे हर कीमत पर समुद्र तट पर पहुंचना था।

इसके बाद प्रारंभ हुआ इस अपहरण अभियान का सबसे कठिन चरण। 8000 फुट ऊंची माउण्ट इडा पर 12 घण्टे तक तेज रफ्तार से चढाई की गई। उनके रास्ते में गहरी खाइयां थीं, जिन पर नर्म-नर्म बर्फ ने खतरनाक और धोखे से भरे हुए आवरण डाल रखे थे। चोटी पर पहुंचते ही रिमझिम शुरू हो गई। एक चरवाहे की टूटी-फूटी झोपडी में भूखे-प्यासे व थके-मांदे गुरिल्ला दल ने ठिठुरते हुए रात होने

तक फिर इंतजार किया। रात होते ही उन्होने उतरना शुरू किया। दो घण्टे वर्फ की निचली पट्टी तक पहुंचने में लगे। इसके बाद उन्हें छोटी-छोटी झाडियो में से रास्ता बनाना पडा। चलते-चलते पेड़ों की डाले उनके चेहरे पर आकर लगतीं। काटों में फस कर उनके कपडे फट जाते। इस दौरान गुरिल्ला सैनिको का मूड इतना खराब हो गया कि पैट्रिक व मोस जनरल की सुरक्षा के प्रति चिंतित हो उठे।

24 घण्टे बाद पहाड़ी चढ़ने-उतरने मे लगभग रिकार्ड तोड़ सफलता प्राप्त करने के बाद जब एक गड्ढे मे बैठकर पैट्रिक ने उस संदेश को दोबारा पढा तो उसे अपना माथा ठोक लेना पडा क्योंकि उनके छापामार साथी ने उन्हें संदेश का गलत मतलब बताया था। उन्हें अपने छिपने के स्थान पर ही ठहरना चाहिए था। अब बहुत देर हो चुकी थी। समुद्र की ओर चलने के अतिरिक्त कोई चारा ही न था।

समुद्र तट पर पहुचते ही उन्होने देखा कि 200 जर्मन सैनिक अपना तम्बू ताने समुद्र तट पर जमे हुए थे। अब उन्हे नए ढग से सारा बंदोबस्त करना था। बहुत कोशिशो के बाद एक नया आपरेटर तलाशा गया और उसी के माध्यम से पलायन के नए रास्ते का सुझाव दिया गया।

चारो ओर जनरल क्राइपे की खोज चल रही थी। कभी भी अपहरणकर्ता जर्मनो के शिकजे में फस सकते थे। इस विकट परिस्थिति मे, जब दुर्भाग्य उनका पीछा नही छोड़ रहा था, एक कातिल व दो भेड चोरो को उन्होंने अपने मार्गदर्शक के रूप मे दल में भर्ती कर लिया। इन तीनों को उस इलाके के प्रत्येक रास्ते की बारीकी से जानकारी थी। इन मार्गदर्शको की मदद से वे जर्मनो को छकाने में सफल रहे।

14 मई की रात को, तीन सप्ताह की दौड के बाद उन्हे एक संदेशवाहक द्वारा जगाया गया, जिसके पास उनकी सफलता और जीवन का पैगाम था "कल रात रोदाकिनी तट पर आपके लिए एक बोट आ रही है। आपको वहा समय से पहुचना चाहिए।"

अपने कातिल व भेड चोर गाइडो के नेतृत्व में वे लोग पहाडियो पर कई घण्टो तक चढ़ते-उतरते रहे तथा दोपहर में वे उस पहाडी पर पहुंचे, जहा से उनका इच्छित समुद्र तट उन्हे दिखाई पड रहा था। इस तट के आस-पास लगे हुए दो जर्मन कैम्प उन्हे साफ दिखाई दे रहे थे। रात के नौ बजे वे दोनों कैम्पों के बीच से होते हुए समुद्र में उनका इंतजार कर रही बोट में सवार हो गए।

तीन दिन बाद काहिरा पहुचने पर पैट्रिक व मोस ने जनरल क्राइपे को विदाई दी। क्राइपे ने रूखी मुस्कराहट से उनकी विदाई स्वीकार की। क्राइपे को लदन ले जाया गया और बंदी शिविर मे डाल दिया गया।

पैट्रिक व मोस को ब्रिटेन के विशिष्ट सेवा पदक से सम्मानित किया गया। युद्ध के बाद क्राइपे जर्मनी मे सेल्समैन का काम करने लगा। उसे अपने दोनो अपहरणकर्ताओ से कोई शिकायत न थी, क्योंकि वे अगर उसका उपहरण न करते तो युद्ध के बाद उसके साथी जनरलों के साथ उसे भी युद्ध अपराधी घोषित करके गोली मार दी जाती।

नाजी गुप्तचर , जिसने हिटलर को धोखा दिया

हिटलर के सिंहासनारूढ़ होने में जिस व्यक्ति ने अत्यंत महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया था—उसका नाम था एडमिरल कनारिस। नाजी जर्मनी के सबसे बड़े जासूस कनारिस का नाम न तो कभी किसी अखबार में छपा और न ही उसने किसी सभा में कभी भाषण ही दिया। फिर भी वह नाजी साम्राज्य का एक आधार-स्तम्भ था।

इस कथा में कनारिस की मदद से हिटलर के उत्थान के साथ-साथ उसके पतन में कनारिस की भूमिका का लेखा-जोखा किया गया है। अंतर्राष्ट्रीय गुप्तचरी के कुटिल जाल में गले तक फंसे कनारिस ने माताहारी जैसी सुंदरी को कैसे जर्मन जासूस बनाया, कैसे वह स्वयं 'डबल एजेंट' बन गया तथा कैसे उसे अपने प्यारे 'फ्यूहरर' के हाथों प्राणदण्ड मिला—यह रोमांचक कहानी प्रथम विश्वयुद्ध से लेकर द्वितीय विश्वयुद्ध के बीच फैली हुई है।

5

कुछ ही घंटों पूर्व द्वितीय विश्वयुद्ध आरंभ हुआ था। बर्लिन की विल्हेल्म सडक पर वह छोटे कद का सामान्य-सा व्यक्ति बिना किसी रोक-टोक के हिटलर की चांसलरी की ओर बढ़ता जा रहा था। चांसलरी में हिटलर के अंगरक्षकों की ओर भी उसने ध्यान नहीं दिया। अन्य अधिकारियों के 'हेल हिटलर' सलाम का जवाब देते हुए वह व्यक्ति सीधे हिटलर के पास पहुचा। उस व्यक्ति का नाम विल्हेल्म कनारिस था। जर्मन खुफिया विभाग के इस इंचार्ज को हिटलर ने पदोन्नति करके एडमिरल बना दिया था। इसलिए वह अपने प्यारे 'फ्यूहरर' को धन्यवाद देना चाहता था।

ठीक 1 सितम्बर, 1939 को जर्मन फौजें सूर्योदय से पहले पोलेण्ड में घुसी थीं और इसी दिन कनारिस को एडमिरल की पदवी मिली। इन दोनो घटनाओं के समय में समानता के कारण ऐसा लग रहा था कि जैसे द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू कराने के उपलक्ष्य मे ही नौसेना के इस मामूली अफसर की, जो वास्तव में जर्मन गुप्तचरो का प्रधान था, पदोन्नति की गई हो। वास्तव में द्वितीय विश्वयुद्ध के विनाशकारी प्रभाव के लिए अगर तत्कालीन विश्व की राजनीतिक परिस्थितियां जिम्मेदार थी तो व्यक्तिगत रूप से इस मानवता विरोधी अपराध के लिए जिम्मेदार व्यक्तियों मे एडमिरल कनारिस का नाम सबसे ऊपर था। विडम्बना देखिए कि नाजी नेताओं तथा हिटलर के सहयोगियो मे केवल कनारिस का नाम ही सम्मान के साथ लिया जाता है। जो कनारिस वाइमर गणतत्र को तोडने, हिटलर को तानाशाह बनाने तथा सारी दुनिया मे जर्मनी जासूसों का जाल फैलाने का प्रमुख जिम्मेदार था, उसके व्यक्तित्व और कृतित्व के दो पहलू थे। एक पहलू उसे कट्टर नाजी बनने के लिए बाध्य करता था तथा दूसरे ने उससे ऐसे काम भी करवाए कि जिस हिटलर ने उसे एडमिरल बनाया था, उसी हिटलर ने उसे गोली से उडवा दिया।

□ □ □

एक जासूस के रूप में कनारिस का जीवन सन् 1914 में प्रथम विश्वयुद्ध से प्रारंभ हुआ। वह जर्मन नौसेना का एक अफसर था। युद्ध के दौरान उसका युद्धपोत समुद्र की लहरों और शत्रुओ के घेरे के दोहरे शिकंजे में फंस गया। कनारिस का जहाज चिली के बंदरगाह पर रुका। यहां उसे युद्ध-बंदी बना लिया गया। चालाक कनारिस रेडक्रास अधिकारी के वेश में वहां मौजूद एक जर्मन जासूस की मदद से भाग निकला और अमेरिका पहुंच कर एक पोलिश यहूदी के वेश मे अपनी जासूसी

की गतिविधियां प्रारंभ कर दीं। इसके बाद कनारिस का दूसरा अभियान था, स्पेन जाकर नौसेना में तोड़फोड करना। ब्रिटिश घेराबंदी को तोडकर स्पेन पहुंचने के लिए उसने स्वयं को चिली का एक सौदागर बताकर ब्रिटिश जहाज पर यात्रा की। स्पेन पहुंच कर उसने अफ्रीका के कबीलों को पैसे देकर फ्रांस के विरुद्ध विद्रोह संगठित करवाया। अमेरिका, कनाडा और ब्रिटेन सरकार की फाइलें कनारिस के विध्वंसकारी कार्यों के ब्यौरों से भरी पड़ी हैं।

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान माताहारी जैसी ऐतिहासिक जर्मन जासूस तैयार करने का श्रेय भी कनारिस को जाता है। मैड्रिड के एक नाइट क्लब में नाचने वाली इस अद्भुत रूपसी को कनारिस ने अपने प्रेम-जाल में फंसाकर एक कुटिल गुप्तचर मे बदल दिया। खूबसूरत न होते हुए भी कनारिस मे कुछ ऐसा आकर्षण था, जिससे जावा में जन्मी वह नर्तकी बच न सकी। माताहारी का असली नाम जेले था और यह डच मां-बाप की संतान थी। कहने के लिए कनारिस मैड्रिड स्थित जर्मन दूतावास में नौसेना का एक अधिकारी था लेकिन उसका असली काम स्पेन को तटस्थता से हटाकर जर्मनी के पक्ष में ले आना तथा फ्रांस मे जर्मन जासूसो को भेजना था। उसने प्रेम और शादी का आश्वासन देकर माताहारी को पेरिस भेज दिया, जहां माताहारी ने फ्रांसीसी सैनिक अफसरो को अपने रूप जाल मे फंसाकर बहुमूल्य सूचनाए प्राप्त की, जिनके सहारे कनारिस के खुफिया विभाग को बड़ा लाभ हुआ।

माताहारी ने अपने नृत्य से पेरिस में जादू-सा कर दिया। उसके चारो ओर प्रभावशाली अधिकारियों का जमघट लग गया।। धन की वर्षा होने लगी लेकिन कनारिस के प्रेम से भरे पत्र आने बद हो गए क्योंकि कनारिस के लिए माताहारी प्रेमिका के बजाय महज जर्मन जासूस एच-21 थी। सन् 1917 में माताहारी कोलोन (जर्मनी) आई और एक जर्मन जनरल को उसके सूचना दी कि कब और किस तरह इग्लैण्ड की सेनाए फ्रास भेजी जा रही हैं। दुर्भाग्य से फ्रांसीसी खुफिया विभाग के एक सदस्य ने माताहारी को जर्मन जनरल से बातें करते हुए देख लिया। माताहारी का जहाज जैसे ही डेनमार्क और इंग्लैंड होता हुआ फ्रांस पहुंचा, उसे तट पर ही एक छद्मवेशीय जर्मन जासूस ने चेतावनी दे दी। डरी हुई माताहारी स्पेन पहुंची और कनारिस से भेट की। कनारिस को उसकी यह हरकत पसद न आई। उसे यह भी पता लग गया कि माताहारी पेरिस मे किसी से प्यार करने लगी है। उसने फौरन पेरिस के जर्मन जासूसों को खबर भेजी। उन्होंने माताहारी के जर्मन जासूस होने की खबर फ्रांसीसी पुलिस तक पहुंचा दी। माताहारी गिरफ्तार कर ली गई और जर्मन जासूस एच-21 को गोली मार दी गई।

प्रथम विश्वयुद्ध समाप्त हो गया। जर्मनी मे कैसर का पतन हो गया। इसका असर कनारिस पर भी पडा। वह बेरोजगार हो गया। किसी तरह उसने वाइमर गणतंत्र के युद्ध मंत्रालय के नौवहन विभाग में घुसपैठ कर ली। वह अपने कमरे में बैठा-बैठा

नाजी विद्रोह कीं योजनाएं बनाता रहता लेकिन कनारिस की असली भूमिका स्पेन में थी, जहां बड़े पैमाने पर जर्मन हथियार इकट्ठे करने के लिए उसने स्पेन के राजा को तैयार कर लिया था। वार्साई संधि का उल्लंघन करने के लिए स्पेन में जर्मन पनडुब्बियां बड़े पैमाने पर बनने लगीं। नौसेना में जासूसी करने में पारंगत कनारिस ने इंग्लैण्ड और इटली के खिलाफ कई महत्वपूर्ण सूचनाएं प्राप्त कीं।

सन् 1929 में उसकी भेंट हिटलर के दायें हाथ मार्शल गोयरिंग से हुई। कनारिस ने वाइमर गणतंत्र के गुप्तचर विभाग को नाजी पार्टी के पक्ष में प्रयोग करने की कुटिल चाल खेली और वह हिटलर का विश्वस्त बन गया। इस बीच उसने इटली को सामरिक महत्व की कुछ गुप्त सूचनाएं बेच कर नाजी पार्टी की धन से सहायता की। कनारिस ने वाइमर गणतंत्र के सभी जर्मन अफसरों के जीवन चरित्र की फाइलें तैयार कीं। चांसलर के कागजात चुरा लिए। इन दस्तावेजों में भूमि-सुधार करके बेरोजगारी मिटाने की योजना बनाई गई थी। हिटलर ने धमकी दी कि प्रस्तावित भूमि-सुधार के खिलाफ उद्योगपतियों और जमीदारों का आंदोलन खड़ा कर दिया जाएगा। बौखलाए हुए राष्ट्रपति हिंडेनबर्ग ने चांसलर को बर्खास्त कर दिया। हिटलर नया चांसलर बना। इस तरह जर्मनी को फासिस्ट शिकंजे मे जकड़ने में कनारिस ने पर्दे के पीछे से लेकिन प्रधान भूमिका का निर्वाह किया।

कनारिस को पर्दे के पीछे रह कर काम करने मे ही आनंद आता था। वह न तो कभी किसी जनसभा में शामिल हुआ, न ही उसका नाम कभी अखबारो में छपा, न कोई फोटोग्राफर उसकी तस्वीर ले सका। वह बर्लिन के दक्षिणी हिस्से में फूलों के बगीचे से घिरे एक घर में रहता था। खुफिया विभाग के किसी कमरे पर उसकी नाम पट्टिका नहीं लगी थी। वह एक गुप्त दरवाजे से अपने ऑफिस मे जाता और बुलेटप्रूफ कार मे सफर करता। उसके सहयोगी भी आफिस मे उसके बैठने के कमरे से परिचित नहीं थे।

□ □ □

फासिज्म के पक्ष में कनारिस का दूसरा कारनामा स्पेन में फ्रांको की तानाशाही स्थापित करवाना था। उसने जर्मनी के प्रभावी और अच्छे अस्त्र-शस्त्र फासिस्टों को तथा पुराने और बेकार हथियार गणतांत्रिक सेना को भिजवाए तथा हिटलर पर दबाव डालकर फ्रांको को 50 करोड मार्क की सहायता दिलवाई।

कहा जाता है कि कनारिस ने सोवियत संघ में एक गलत सूचना भिजवा कर कि कुछ फौजी जनरल स्तालिन की हत्या करवा देना चाहते हैं, कई महत्वपूर्ण सोवियत सेनापतियो को मृत्युदण्ड दिलवाने की पृष्ठभूमि तैयार की।

ये तमाम कारनामे उसे हिटलर की आंखों का तारा बना देने के लिए काफी थे। उसने ब्रिटेन और अमेरिका की योजनाओं का पता लगाया। वह झूठे पासपोर्ट से लंदन पहुंचा। दो माह लंदन रहकर वह हॉलैण्ड गया, जहां केली नामक अंग्रेज से

उसने भेंट की, जो जर्मन जासूस था। ब्रिटिश खुफिया विभाग को केली पर पहले से संदेह था। वह कनारिस का भी पीछा कर रहा था। स्काटलैण्ड यार्ड ने केली को गिरफ्तार करके डबल एजेंट बनने पर बाध्य कर दिया। अब केली बेकार की सूचनाएं जर्मनों को देता तथा महत्वपूर्ण सूचनाएं ब्रिटेन को देता। कनारिस को जब यह पता चला तो उसने और खोजबीन की। उसके कई जासूस ब्रिटेन के लिए काम कर रहे थे। लेकिन कनारिस ने इस दुहरी जासूसी को रोकने की कोई कोशिश न की, क्योंकि उसे अमेरिका के युद्ध मे शामिल होने के संकेत मिल गए थे। इसका साफ मतलब था—हिटलर की हार और जर्मनी की दुर्गति।

हंगरी के फासिस्ट तानाशाह होर्थी का कहना था कि वह और कनारिस सन् 1939 में ही इस राय पर पहुंच चुके थे कि अगर अमेरिका ने युद्ध मे कदम रखा तो जर्मनी का खात्मा हो जाएगा।

फलस्वरूप कनारिस इस उद्देश्य से डबल एजेंट बन गया, जिससे हिटलर के साथ-साथ जर्मनी भी रसातल मे न चला जाए। प्रारंभ में वह भी हिटलर की तरह जर्मन सूरज को सारी दुनिया पर चमकते हुए देखना चाहता था लेकिन धीरे-धीरे

उसे लगने लगा कि यह दिवास्वप्न कभी पूरा नहीं होगा। शायद यही वजह थी कि हिटलर में विश्वास न रहने के कारण कनारिस ने अपने ओहदे का ख्याल न रखते [illegible] त्र राष्ट्रों को गुप्त सूचनाएं भेजना प्रारंभ [illegible] आयोजित करके चर्चिल की हत्या का आदेश भी अपनी चालाकी से विफल करवा दिया। विमान दुर्घटना तो हुई लेकिन उसमें चर्चिल की जगह कोई [illegible] था। नाजी सेना में हुई आंतरिक तोड़-फोड़ [illegible] की आवाजों के पीछे भी उसी का दिमाग काम कर रहा था।

□ □ □

कनारिस ने रोम में पोप से भी संपर्क किया और ब्रिटेन को खबर दी कि कुछ जर्मन जनरल रूस से संधि कर लेना चाहते हैं। इस सूचना ने बाद में याल्टा और तेहरान सम्मेलनों मे मित्र राष्ट्रों की वार्ता पर असर डाला। तभी हिटलर को बम से उड़ा देने की साजिश हुई, जिसके नेता स्ताउफेनबेर्ग थे। उन्हें विश्वास हो गया कि हिटलर बम के धड़ाके में मारा गया है। इस साजिश की रूप-रेखा तैयार करने वाले कनारिस ने अनजान बनते हुए पूछा, "किसकी साजिश थी? क्या रूसियों की?" उसे विश्वास था कि हिटलर जीवित है, मरा नहीं।

हिटलर का ख्याल था कि जो खुफिया प्रमुख उसके जीवन की रक्षा नहीं कर सकता, वह उसके लिए बेकार है। उसे कनारिस के साजिश में हाथ होने का शक भी था। इस घटना के दो दिन बाद कनारिस को जर्मन पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया।

कनारिस की जगह लेने वाले जनरल शेलेनबर्ग को उसकी मेज की दराज में कुछ ऐसे कागजात मिले, जिनकी वजह से कनारिस को फायरिंग स्क्वाड का सामना करना पड़ा। इन कागजातों में पोप के सचिव के साथ शांति संधि के लिए हुए पत्र व्यवहार की प्रतियां, नाजी बर्बरता के वर्णन से भरी हुई एक डायरी तथा हिटलर की मानसिक स्थिति का पता बताने वाली एक चिकित्सकीय रिपोर्ट मुख्य थी।

फ्लोसेनबेर्ग के यातना-शिविर में कनारिस को जबर्दस्त यातनाएं दी गईं लेकिन गेस्टापो के एजेण्ट उससे कुछ भी नहीं उगलवा सके। युद्ध समाप्त हो चुका था। इटली की कमर टूट गई थी। सोवियत संघ की लाल फौजें बर्लिन की ओर बढ़ रही थीं। ऐसी परिस्थिति में 8 अप्रैल, सन् 1945 को सुबह 5 बजे कनारिस को देशद्रोह के अपराध में गोली मार दी गई। प्रश्न उठता है क्या वह वास्तव में देशद्रोही था?

कनारिस के अंतिम शब्द थे—"मैं अपनी मातृभूमि के लिए मर रहा हूं। मेरी आत्मा शुद्ध है। हिटलर जर्मनी को विनाश की ओर ले जा रहा था। मैंने देश के प्रति अपना कर्त्तव्य समझ कर हिटलर के पागलपन का विरोध किया। जर्मनी जिन्दाबाद।"

ब्रिटेन के प्रधानमंत्री चर्चिल ने कनारिस के बारे में कहा, "कनारिस हमारी सेवा में नहीं था लेकिन उसने हिटलर के विनाश मे हमारी मदद की।"

●●

चर्चिल का पलायन

सर विंस्टन चर्चिल को दूसरे विश्वयुद्ध के तूफानी वर्षों के दौरान उभरे एक ऐसे कुशल राजनीतिज्ञ के रूप में जाना जाता है, जिन्होंने पराजय के गर्त में जा रहे इंग्लैण्ड को अपने नेतृत्व से उबारा। संभवतः बहुत कम लोगों को मालूम है कि चर्चिल के व्यक्तित्व में जोखिम उठाने की प्रवृत्ति तथा हार न मानने की दृढ़ता राजनीति में आने से पहले ही मौजूद थी।

दक्षिण अफ्रीका में छिड़े 'बोअर' युद्ध के समय चर्चिल एक युवा पत्रकार के रूप में युद्ध-भूमि पर पहुंचे और पहुंचते ही मौत के शिकंजे में फंस गए। बोअर सेना की कैद से भाग निकलने में चर्चिल की इन चरित्रगत विशेषताओं ने भारी मदद की।

कहना न होगा कि इस सफल पलायन ने, जिसमें मौत कई बार उन्हें छूते-छूते रह गई, चर्चिल एक वीर नायक के रूप में प्रख्यात हुए और बाद में उन्हें राजनीति में भी सबसे महत्वपूर्ण स्थान मिला।

6
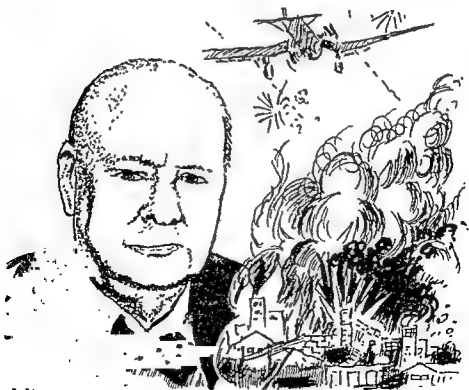
सन् 1899, दक्षिण अफ्रीका। छोटा-सा खनिज नगर एस्टकोर्ट। इंग्लैण्ड और आरेंज फ्री स्टेट के गणराज्यों का युद्ध चल रहा था, जो इतिहास में 'बोअर युद्ध' के नाम से मशहूर है। एक छोटे से रेलवे स्टेशन पर एक रेलगाड़ी रुकी, जिसमें बैठे ब्रिटिश सैनिक आगे घिरी हुई अंग्रेज घुड़सवार सेना की सहायता के लिए भेजे गए थे। इसी रेलगाड़ी में इंग्लैण्ड के 'मार्निंग टाइम्स' का एक युवक संवाददाता भी मौजूद था, जिसे विशेषरूप से युद्ध की रिपोर्टिंग करने के लिए भेजा गया था। इस रेलगाड़ी के 3 डिब्बे इंजन के आगे लगे हुए थे और तीन बाकी डिब्बे पीछे।

अचरज की बात यह थी कि रेलगाड़ी आगे जाने के बजाय पीछे हट रही थी, क्योंकि ड्राइवर ने कुछ बोअर सैनिकों को रेलगाडी की तरफ बढ़ते हुए देख लिया था। रेलगाडी जैसे ही पीछे हट कर पहाड़ियों के बीच पहुंची, ड्राइवर को पहाड़ियों पर हमले के लिए खडे और ज्यादा बोअर सैनिक दिखाई दिए। अचानक बोअर तोपों से निकला हुआ एक गोला रेलगाड़ी के ऊपर गिरा तथा उसका अगला हिस्सा क्षतिग्रस्त हो कर पटरी से उतर गया। अब स्थिति यह थी कि आगे डिब्बे लुढ़के पड़े थे।

रेलगाड़ी के पटरी से उतर जाने के कारण हुए घायलों और मृतकों को रास्ते से हटाने तथा लुढ़के हुए डिब्बों को धकेल पर पटरी से दूर हटाने में पीछे के डिब्बों के सैनिकों को 70 मिनट लग गए। मुड़े हुए लोहे का जमीन में धंसा हुआ एक टुकड़ा अभी बाकी था, जो निकलने का नाम ही नहीं ले रहा था। उस संवाददाता के उर्वर दिमाग में आया कि अगर इंजन को ढलान पर छोड़ दिया जाए तो उसकी रफ्तार और दबाव से वह लोहे का टुकडा दब जाएगा। ऐसा ही हुआ लेकिन जैसे ही इंजन गुजरा, वह टुकडा फ़िर पहली स्थिति मे अड़ गया। इससे गाड़ी फिर रुक गई। युवक संवाददाता ने फौरन सुझाव दिया कि इंजन पर घायलों को लादकर आगे भेज दिया जाए और बाकी सैनिक इंजन के पीछे छिपते हुए चलें। एक बार फिर उस नौजवान का सुझाव पसंद किया गया। देखते-देखते 140 घायलों को लेकर इंजन बोअर गोलों की मार में से होता हुआ बढ़ चला। इस इंजन पर वह संवाददाता भी सवार था। नदी के पुल से पहले वह युवक उतर गया और ड्राइवर से पुल पार करके प्रतीक्षा करने के लिए कहा तथा स्वयं पैदल सेना का पता करने के लिए पीछे लौट पडा।

सैनिक न होते हुए भी सैनिकों की तरह अपनी जान खतरे में डालने वाले उस युवक का नाम विंस्टन चर्चिल था, जिसे भविष्य मे इंग्लैण्ड का प्रधानमंत्री बनना था।

इंजन से मात्र 200 गज दूर चलने के बाद ही दो बोअर सैनिकों ने उन्हें घेर लिया। वे मुड़कर इंजन की तरफ फिर भागे। उनके आस-पास से गोलियां सनसनाती हुई निकल रही थीं। तभी सामने से एक अन्य बोअर घुड़सवार ने उन्हें अपने निशाने पर ले लिया। अब कोई चारा न था। उन्हें आत्मसमर्पण करना ही पड़ा।

चर्चिल युद्ध-बंदी बना लिए गए। उन्होंने बोअर सैनिकों के सामने अपने असैनिक पत्रकार होने का लाख तर्क दिया लेकिन उनकी एक भी बात नही मानी गई। उन्हें प्रिटोरिया ले जाकर स्टेट मॉडल स्कूलो मे नजरबंद कर दिया गया।

□ □ □

एक सामान्य बदी और युद्धबंदी मे बडा फर्क होता है। आमतौर पर शत्रु उन पर बेहद कड़ी निगरानी रखता है। धीरे-धीरे लम्बी कैद के कारण आम युद्धबंदियों का आचरण आपस में बात-बात पर लड़ने वाला और शत्रु पहरेदारो के समक्ष समर्पण करने वाला हो जाता है लेकिन चर्चिल विवशता के इस समझौते के लिए तैयार न थे। गिरफ्तारी के समय से ही उनके दिमाग में भागने की योजना पकने लगी थी। जब उन्हें विश्वास हो गया कि जेल अधिकारी से उन्हें किसी भी तरह से पत्रकार होने की रियायत नही मिलेगी तो उन्होंने 3 सप्ताह बाद भागने का इरादा पक्का कर लिया।

स्कूल की इमारत के दो ओर दस-दस फुट ऊंची लोहे की छड़ों की तथा दो ओर लोहा चढ़ी हुई दीवारें थी। इन दीवारो के पास हर दस गज पर एक पहरेदार था। चर्चिल ने अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से यह जान लिया कि पूर्व की ओर बने एक स्नानघर की वजह से सतरियों की निगाह कुछ गज तक दीवार पर नही पड़ती और न ही वहां रोशनी पहुचती थी।

जैसे ही उस जगह पर तैनात संतरियो ने थोडी लापरवाही से आपस में बातचीत करना शुरू की और उनकी पीठ एक ही दिशा में हुई, वैसे ही गुसलखाने में घुसकर छिपे हुए चर्चिल ने चहार-दीवारी को कूदकर पार कर लिया लेकिन इस कोशिश में उनकी जैकिट लोहे की छड़ मे फंस गई। चर्चिल ने बिना घबराए हुए जैकिट को छड़ से अलग किया और स्कूल के बगल में बने बगले के बाग में छिप गए। इस बीच संतरी निश्चित भाव से सिगरेट पीते रहे। चर्चिल ने अपने फैल्ट हैट को सिर पर रखा और आत्मविश्वास से चलते हुए बगले के दरवाजे से निकल गए। उनसे 4-5 गज दूर ही एक और सशस्त्र प्रहरी तैनात था लेकिन चर्चिल किसी भगोड़े की तरह पैर दबाकर नहीं वरन् शान से चल रहे थे। इसी कारण उसे उन पर शक नहीं हुआ। सौ गज चलने के बाद उन्होंने संतोष की सांस ली। अब वे प्रिटोरिया शहर मे थे।

चर्चिल प्रिटोरिया में सड़कों पर किसी गीत की धुन गुनगुनाते घूमते रहे। शहर रईसों से भरा हुआ था लेकिन चर्चिल की तरफ किसी ने ध्यान नही दिया। चर्चिल को सुबह होने से पहले अपने भागने का इंतजाम करना था क्योंकि सुबह होते ही

उनकी खोज शुरू हो जानी थी। उनकी जेबों में 75 पौण्ड और 4 चाकलेट थे। उन्होने भूरे रंग का सूट पहन रखा था।

काफी सोच-समझ कर चर्चिल ने डेलागोवा स्टेशन का रास्ता पकड़ा। दक्षिण की ओर आधा मील चलने के बाद उन्हे रेलवे लाइन दिखाई दी। वह उसी के सहारे 2 घण्टे तक चलते रहे, तब जाकर उन्हें स्टेशन की सिगनल लाइट दिखाई दी। प्लेटफार्म से 200 गज दूर एक खड्ड में अपने को छिपाकर उन्होंने एक घण्टे तक रेलगाड़ी की प्रतीक्षा की। चर्चिल का धीरज छूटने ही वाला था कि उन्हें एक मालगाड़ी आती दिखाई दी। मालगाडी 5 मिनट तक प्लेटफार्म पर रुकी और आगे बढ़ गई। चर्चिल के सामने से गुजरते समय उसकी रफ्तार खासी तेज थी, लेकिन फुर्ती से छलांग लगाकर चर्चिल उसके एक डिब्बे में घुस गए। वहा मुलायम लेकिन कोयलों की धूल से घिरे हुए बोरो के बीच उन्होंने अपने छिपने का स्थान बनाया।

इस रेलगाड़ी को चर्चिल ने पौ फटने से पहले ही छोड दिया। पूर्व की ओर जाने वाली एक रेल लाइन के किनारे चर्चिल पूरे दिन एक झुरमुट में छिपे रहे। ऊंची-नीची पहाड़ियों से नीचे घाटी मे गिरने वाले एक सोते ने उनकी प्यास बुझाई। भोजन के नाम पर उनके पेट में केवल यह पानी ही गया था। वह शाम होते ही रेलगाड़ियों की प्रतीक्षा करने लगे पर पलायन की असली कठिनाइयां तो अब शुरू होनी थीं।

☐ ☐ ☐

चर्चिल को आधी रात तक कोई गाड़ी न मिल सकी। अतः उन्होंने पैदल चलना शुरू कर दिया। वे जल्दी ही थक गए क्योंकि उन्होंने पुलों का प्रयोग नहीं किया वरन् घुमावदार रास्तों के दलदलों में धंसते हुए चलने की योजना बनाई। पुलों पर पहरा था और पकड़े जाने की पूरी गुंजाइश थी।

चर्चिल थके-मांदे और भूख से कुलबुलाता हुआ पेट लेकर चले जा रहे थे। उनके दोनो ओर मकानों की कतारे शुरू हो गई थी, जिनकी खिड़कियों से रोशनी झांक रही थी। उन्होने एक खामोश और अधेरे मकान पर दस्तक दी। मकान की खिड़की खुली और डच भाषा मे किसी ने पूछा "कौन है?" चर्चिल ने साहस करके जवाब दिया "मैं एक दुर्घटना में फस गया हूं। मुझे मदद चाहिए। रेलगाड़ी से गिरने के कारण मेरा कंधा टूट गया है।"

चर्चिल को मकान के अंदर बुला लिया गया। मकान मालिक पिस्तौल से लैस था लेकिन चर्चिल को देखकर उसने पिस्तौल मेज पर रख दी और दुर्घटना का पूरा ब्यौरा जानना चाहा। उत्तर मे चर्चिल ने उस व्यक्ति को अपने पलायन की पूरी कहानी सुना डाली और उससे कहा कि वे सीमा पार करना चाहते हैं। पहले तो मकान मालिक खामोशी से चर्चिल को देखता रहा। फिर वह उठा और दरवाजा बद करके चर्चिल की ओर मुडा। चर्चिल ने देखा कि उसने दोस्ती का हाथ बढ़ा रखा है। उसने चर्चिल को बताया कि वह ट्रांसवाल कोयला खान का अंग्रेज मैनेजर

है और अगर चर्चिल ने उसके मकान के अलावा किसी और मकान पर दस्तक दी होती तो उन्हें निश्चित रूप से बोअर अधिकारियों के हवाले कर दिया जाता। चर्चिल ने अपने नए शरणदाता से एक पिस्तौल, एक गाइड, कुछ खाना व घोड़ा मागा। उसने ये चीजे देने के बजाय उन्हें कोयला खान के कुएं के रास्ते एक गुप्त लेकिन हवादार कमरे में छिपा दिया और स्वयं उनके पलायन का इंतजाम करने चला गया।

दूसरे दिन उसने चर्चिल को बताया कि उनके भाग निकलने से बोअर प्रशासन में बडी हायतोबा मची हुई है और बोअर अधिकारियों का अनुमान है कि चर्चिल प्रिटोरिया में ही किसी अंग्रेज के घर मे छुपे हुए हैं। चर्चिल मन ही मन मुस्करा दिए लेकिन वह भी अभी तक अपने बच निकलने के प्रति आश्वस्त नहीं थे। चर्चिल को उनके मेजबान ने पुनः अपने बंगले में छिपा लिया। दिन में चर्चिल पैकिंग के डिब्बों के पीछे छिपे रहते। रात में उन्हे ताजी हवा नसीब होती। पांच दिन बाद उन्हे उनके सीमा पार करने की पूरी योजना बताई गई। इसके चार दिन बाद रात के दो बजे अधेरे मे उनके मेजबान ने उन्हें रेलवे साईडिंग पर खडे तीन डिब्बो मे से एक में चढा दिया। डिब्बे में भरे ऊन के गट्ठरों के बीच चर्चिल के लिए जगह बना दी गई थी, जहा वह सो सकते थे। उस छोटी सी जगह मे एक पिस्तौल दो भुने हुए मुर्गे, गोश्त के कुछ टुकड़े, एक डबल रोटी, एक तरबूज तथा ठण्डी चाय की तीन बोतलें रखी हुई थीं। वैसे तो चर्चिल का सफर मात्र 16 घण्टे का था लेकिन वह लड़ाई का जमाना था, इसलिए देर भी लग सकती थी।

रेलगाडी पूरे दिन चलती रही। रात में चर्चिल इस डर से नहीं सोए कि उनके खर्राटे उनकी मौजूदगी की पोल खोल देंगे। रास्ते मे स्टेशनो पर, जहां रेलगाड़ी रुकी, बेहद शोर-शराबा सुनाई पडा। सीटिया सुनाई देती रही। चर्चिल धड़कते दिल से उन खतरनाक क्षणो की प्रतीक्षा करते रहे, जब रेलगाडी की तलाशी लेने का नम्बर आना था। वे क्षण आए लेकिन तब तक वे अपनी मंजिल से बहुत कम दूर रह गए थे। फिर भी चर्चिल को लगा कि अब शायद वे पकड़े जाएंगे। दरअसल, कम सोने के कारण उनकी आंख लग गई थी। जब वे जागे तो रेलगाड़ी की तलाशी हो रही थी। सौभाग्य ने एक बार फिर चर्चिल का साथ दिया। वे तलाशी लेने वालों की नजर से बच गए। अगले ही स्टेशन पर उन्हें पुर्तगाली अधिकारियों की वर्दियां दिखाई पडीं। उनकी खुशी का ठिकाना न रहा। उन्होने अपने छिपने के स्थान से तिरपाल हटा दिया और चिल्ला-चिल्ला कर गाने लगे। उन्होंने उत्साह में भरकर अपनी पिस्तौल से तीन गोलियां भी हवा मे चलाईं।

चर्चिल रेलगाड़ी से उतरकर सीधे ब्रिटिश कौंसुलेट पहुंचे, जहा उन्हें लम्बे समय बाद गर्म स्नान, साफ कपडे, शानदार भोजन और तार भेजने की सुविधाएं प्राप्त हो गईं। उसी शाम को डरबन के लिए छूटने वाले साप्ताहिक जहाज पर वे सवार हो गए।

डरबन बदरगाह युवक संवाददाता के स्वागत के लिए पताकाओं से सजाया गया था। बैण्ड बज रहा था। एडमिरल और नगर के मेयर से हाथ मिलाने के बाद चर्चिल अपने प्रशंसकों के कधों पर सवार होकर टाउन हाल पहुंचे। वहां उनके भाषण को सुनने के लिए हजारों लोग जमा थे।

□ □ □

चर्चिल के इस ऐतिहासिक पलायन ने उनकी राजनीतिक प्रगति के रास्ते खोल दिए। वे विख्यात हो चुके थे। अपनी वक्तृत्व शैली और बौद्धिकता के दम पर वह सन् 1900 मे सांसद चुने गए। सन् 1914 मे मंत्रिमंडल के सदस्य बने और द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अपने प्रधानमंत्रित्व काल में उन्होंने जर्मन बमो की मार से थके-हारे इंग्लैण्ड का नेतृत्व किया।

वास्तव में द्वितीय विश्वयुद्ध में निराशाजनक पराजय के गर्त से इग्लैण्ड को उबार लेने वाले इस इतिहास पुरुष ने रोमांच, दुस्साहस तथा मृत्यु से संघर्ष की परीक्षा अपनी युवावस्था में ही दे दी थी। सम्भवत: उसी धैर्य ने उन्हें हिटलर के खिलाफ अपने मुल्क को टिकाने में भी समर्थ बनाया, जिसने उन्हें बोअर पहरेदारो की आंखों मे धूल झोकने में सफलता प्रदान की थी।

●●

तरुण नाविक की अग्नि-परीक्षा

यह पश्चिम से पूर्व की ओर समुद्री यात्रा की ऐसी अनूठी कहानी है, जो आशा, निराशा, तरुणाई के अदम्य साहस तथा दृढ़ संकल्प के बीच डूबती-उतराती चलती है।

'जूडिया' नामक उस पुराने जहाज पर सवार नाविकों के पैरों के नीचे कोयले का पहाड़ सुलग रहा था। कभी भी उनका जहाज आग की प्रलयंकर लपटों में घिर सकता था—तिस पर हहराता समुद्री तूफान और उड़ा फेंकने वाली तेज हवाएं—लेकिन मंजिल पर पहुंचने की अदम्य इच्छा ने उन नाविकों को चलते रहने की अजस्र शक्ति प्रदान की। समुद्र की छाती पर एक जलते हुए जहाज को देखना भीषण दुःस्वप्न की तरह है। 'जूडिया' का भी यही अंत हुआ लेकिन उन साहसी नाविकों का क्या हुआ, जो एक बूढ़े कप्तान के नेतृत्व में रहस्यमय पूर्व की ओर तैरते हुए चले जा रहे थे?

7

आधे घण्टे बाद ही वह पुराना जहाज 'जूडिया' एक बूढ़े आदमी की तरह लडखड़ाने लगा। बहते हुए समुद्र की फुसफुसाहट के बीच धुएं से चिंगारिया फूटी। दोनों लगर लाल होकर सागर के पेट मे समा गए। जजीरे गर्म होकर पिघल गई। मस्तूल गिर पड़ा। आग की रोशनी मे सब कुछ दिन जैसा लग रहा था। सर्वनाश और विध्वंस का दिन—लेकिन ऐसी विकट परिस्थिति मे भी जूडिया का कप्तान अपने केबिन से गद्दी बाहर खीच कर उस पर आराम से सो रहा था। जहाज के बाकी लोग डेक पर आराम से बैठे रोटी और पनीर के साथ शराब पी रहे थे। उनकी आंखो तथा फटी हुई कमीजो से झाकते अगो पर आग अपनी चमक डाल रही थी। उनके शरीरो पर इस तरह की चोटे थी, जैसे वे कोई युद्ध लडकर आए हो। वास्तव मे जूडिया को आग से बचाकर गतव्य तक पहुचाने के लिए उन्होने जो संघर्ष किया था, वह किसी भीषण युद्ध से कम न था। पर इस समय वे बेफिक्र थे। वे जानते थे कि उनकी मेहनत बेकार हो चुकी थी। सागर की हिंसा और प्राकृतिक आपदाओं के समक्ष मानवीय प्रयत्न थोडी देर के लिए हार गया था। वे यह भी जानते थे कि अब उन्हें 'जूडिया' छोड देना पडेगा। उनकी मजबूर बेफिक्री, विचित्र शारीरिक स्थिति, आग की लपटें और सागर के गर्जन ने वहां जो दृश्य बना दिया था, उसमें जूडिया के वे जहाजी पुराने युगो के समुद्री लुटेरो जैसे लग रहे थे।

किसी भी जहाज के नाविको के लिए सबसे दुखद क्षण वे होते है, जब उन्हे अपना पोत छोडना पडता है। जूडिया के कप्तान व उसके साथियों को भी यह पीडा खामोशी से झेलनी थी, जो हर नाविक के जीवन का दुःस्वप्न होती है।

जूडिया लंदन की टेम्स नदी से चला था और उसकी मंजिल थी बैंकाक अर्थात् दुनिया का पूर्वी हिस्सा। जूडिया के गर्भ भण्डार मे कोयला भरा था, जिसे बैंकाक पहुंचाना था। समुद्री यात्रा पर चलने से पहले जूडिया की हालत ऐसी नहीं थी कि उसे किसी गम्भीर 'समुद्री यात्रा पर ले जाया जाए लेकिन सम्भवतः उसकी चमकती हुई नाम-पट्टिका के नीचे लिखे हुए नारे 'करो या मरो' ने ही उसके बूढे कप्तान को समुद्र में उतर जाने की प्रेरणा दी होगी।

जूडिया की यह यात्रा शुरू से ही परेशानियो और खतरो से भरी हुई रही। उसके नाविको को इतने संकट झेलने पड़े कि उन्होंने उसे 'नाविकों के नर्क' की संज्ञा दे डाली।

जूडिया की मृत्यु से पल-पल संघर्ष करते हुए यात्रा करने की यह कहानी इस रोमांचक घटना के 22 वर्ष बाद जूडिया के सेकण्ड मेट मार्लो ने अपने चार मित्रों को सुनाई। महोगनी नामक लकडी की बनी मेज की चिकनी सतह में अपनी छवि को देखते हुए शराब के सहारे उन क्षणों की यादें करोद कर मार्लो ने एक वकील, एक एकाउण्टेण्ट, एक लेखक तथा कम्पनियों के एक निर्देशक को जो कुछ सुनाया, वह समुद्री यात्राओं के नाविक इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना थी।

☐ ☐ ☐

जूडिया के ढांचे की हालत से जाहिर था कि उसके कर्मचरियों को अन्य जहाजों की अपेक्षा अधिक काम करना पड़ेगा। उसके कप्तान ने मार्लो के सेकण्ड मेट के पद पर काम करने के आवेदन को स्वीकार करते हुए यही चेतावनी दी थी क्योंकि मार्लो इससे पहले क्रेक आस्ट्रेलियन क्लिपर पर काम करता था। कप्तान का ख्याल था कि केवल 20 वर्ष का एक सेकण्ड मेट सम्भवतः कड़ी मेहनत से घबरा जाएगा लेकिन अतत. उसने मार्लो में अपना विश्वास प्रगट किया। उधर मार्लो को जूडिया पर पहले दिन ही ऐसा लगा कि वह महल से सीधा झोंपड़ी मे आ गया है। कहां शानदार क्लिपर और कहां कमजोर टूटा-फूटा जूडिया।

जूडिया को चारमाउथ बदरगाह से कोयला भरना था लेकिन टेम्स से चारमाउथ तक की यात्रा में ही उसे हवा, बिजली, बर्फ और भयानक लहरों के मिले-जुले हमले का सामना करना पडा। इससे जूडिया की रफ्तार बहुत कम हो गई और उसे केवल बंदरगाह की गोदी तक पहुचने मे ही 16 दिन लग गए।

कोयला भरकर सीटी बजा दी गई। जनवरी का खूबसूरत मौसम था। जब तक जूडिया उत्तरी सागर और ब्रिटिश चैनल की ओर सैकड़ो मील चलता रहा, यह खूबसूरती बनी रही। पर उत्तर-पश्चिमी हवा चलते ही अंधमहासागर के कुख्यात तूफानो में से एक तूफान ने उसे घेर लिया। सागर की शक्तिशाली लहरो पर जूडिया का जर्जर ढांचा खिलौने की तरह उछलने लगा। सबसे भयानक स्थिति की शुरूआत तब हुई जब लहरो ने जूडिया में पानी भरना शुरू कर दिया। अब मार्लो और उसके साथी रात दिन पम्प से पानी बाहर करने लगे। पानी उलीचने की यह प्रक्रिया इतनी लम्बी चली कि नाविकों को यह लगने लगा कि जैसे वे अनंतकाल से यही काम कर रहे हों।

इस परिस्थिति में मार्लो ने अपने जीवन की इस पहली समुद्री यात्रा के बारे मे सोचा। वह मन ही मन खुश था। उसे खतरों भरी चुनौती की तलाश थी। रोमांच का स्वाद उसे लग चुका था। सागर पर उछलता हुआ जूडिया उसे अपनी युवावस्था सार्थक करता हुआ लगता। बैंकांक पहुंच कर पूर्वी दुनिया के दर्शन करने की उसकी इच्छा कुछ ऐसी ही थी, जैसे पुराने जमाने के खोजियों के मन में नई दुनियाओं की खोज करने की अदम्य लालसा लहरें मारती रहती होंगी।

दूसरे दिन आसमान जरूर साफ हुआ और लगा कि सागर नम्रता की प्रतिमूर्ति बन गया हो लेकिन तूफान जो नुकसान कर सकता था, वह कर चुका था। जूडिया के पेंदे से पानी आने लगा था। फर्क इतना था कि तूफान के समय पम्प लगातार चलाना पड़ रहा था लेकिन अब हर दो-दो घण्टे के बाद पानी उलीचने के लिए पम्प चलाना था।

जूडिया में जो दरारें पड़ चुकी थीं, उन्हें भरने के लिए उसे फालमाउथ बदरगाह पर रोकना पड़ा। मार्लो और उसके साथियों को इस बंदरगाह पर उनका मजाक उड़ाती लोगो की बातो और निगाहों का सामना करना पड़ा। वे सभी इस बात पर हंस रहे थे कि जूडिया अपनी टूटी-फूटी हालत मे कैसे बैंकाक तक पहुचेगा। अततः एक ठेकेदार की मदद से जूडिया का पेंदा तांबे और लोहे की पट्टियों से ठीक किया गया और नई सम्भावनाओ के साथ बूढा जहाज एक बार फिर अपने जीवन की अंतिम यात्रा पर चल पडा।

हिंद महासागर में जावा की ओर बढ़ते समय अचानक एक अशुभ शनिवार को मार्लो को पीने के पानी की टंकी में से सड़े हुए मेंढको और जलते मोम की मिली-जुली बदबू आती महसूस हुई। उसके दिमाग मे खतरे की घण्टी बज उठी। जहाज के कोयले में आग लग चुकी थी। इस जानकारी से बूढ़ा कप्तान भी उदास हो गया लेकिन उसने साहस नहीं छोड़ा और कहा, "वैसे तो पश्चिमी आस्ट्रेलिया का तट नजदीक है, लेकिन हम अपनी मंजिल पर जाकर ही रुकेगे। चाहे हम इस आग में भुन ही क्यों न जाएं। हमारी कोशिश होगी कि हवा का अभाव पैदा करके इस आग को बुझा दिया जाए।"

आग से लडाई शुरू हुई। ज्यों-ज्यो पानी का इस्तेमाल किया गया, धुआ बढता चला गया। दमघोटू धुए से जूडिया पूरी तरह भर गया। जहाज के हर छेद से धुआ बाहर निकल रहा था। आग पर काबू पाने के लिए पानी के अलावा और भी तरीके आजमाए गए लेकिन सफलता न मिली। आग और धुएं का प्रकोप इस कदर बढ़ा कि नाविक जीवनरक्षक नावों का इस्तेमाल करने के लिए सोचने लगे लेकिन अभी जूडिया की जिंदगी का सूर्यास्त नहीं हुआ था। अचानक नाविकों को लगा कि धुआ कम हो रहा है। वे तेजी से जहाज के पेंदे को पानी से भरने लगे। अगले दो दिनों में उन्हे एक भारी जीत हासिल हो गई। धुआं बंद हो गया लेकिन जलन की बदबू अभी भी बाकी थी। जिसका अर्थ था कि अंगारे कहीं सुलग रहे है। एक सप्ताह के संघर्ष से थके हुए लोगो ने जलन की बदबू के बावजूद शानदार खाना खाकर समारोह मनाया।

पर दूसरे ही दिन दुर्भाग्य से मार्लो को ही फिर आग का संदेश पूरे कार्गो तक पहुंचाना पड़ा। रविवार को मुख्य डेक पर प्रातः दस बजे बेंच के सहारे खड़े मार्लो को लगा कि वह हवा में नीचे की तरफ गिरता जा रहा है। दरअसल कोयले की आग से डेक जल गया था और उसमें छेद हो चुका था। उसी छेद मे से जाकर मार्लो

जलते हुए कोयले के ढेर पर जा गिरा। उसके सिर, बरौनियों व मूंछों के बाल जल गए थे तथा चेहरा चोट लगने से लहूलुहान हो चुका था। वह फुर्ती से अपनी एक चप्पल वहीं छोड़ कर कप्तान के केबिन की ओर भागा। आश्चर्य तो यह था कि जूडिया अब भी तैर रहा था। शायद वह अभी तक कुछ कर गुजरने के मूड में था।

जूडिया की तरह उसका कप्तान भी जिद्दी था। उसे डेक के जल जाने की नहीं, वरन् बैंकाक पहुंचने की चिंता थी। सभी कर्मचारी जले व टूटे हुए मलबे की सफाई में लग गए। मस्तूल अभी कायम था। पता नहीं उसका कितना हिस्सा जल चुका था। अचानक रसोइये को दूर कहीं स्टीमर दिखाई पडा।

कप्तान के इशारे पर दो झण्डे फहरा दिए गए। जिसका मतलब था कि हमारे जहाज मे आग लग चुकी है। उस स्टीमर ने भी दो झण्डे फहराकर जवाब दिया कि वह सहायता के लिए ही आया है। यह डाक ले जाने वाला स्टीमर था, जो खतरे में फंसे जहाज को देखकर आ गया था।

आधे घण्टे बाद ही जूडिया के इंजन रुक गए और वह पानी पर डगमग करने लगा। मार्लो और उसके साथियो का धीरज टूट गया। उन्होने 'बचाओ-बचाओ' की आवाज लगाई। तभी स्टीमर द्वारा भेजी गई एक नाव जूडिया से आ लगी। उस पर स्टीमर का कप्तान मौजूद था। जूडिया के कप्तान ने उससे बातचीत की। थोडी ही देर बाद वह स्टीमर जूडिया को बहाविया की ओर घसीटता हुआ ले जाने लगा। योजना यह थी कि बहाविया पर आग बुझाकर बैंकाक की ओर पुनः यात्रा प्रारम्भ की जाएगी। स्टीमर इसी उद्देश्य से तेज रफ्तार से जूडिया को खींच रहा था।

यही तेज रफ्तार जूडिया का काल बन गई। तेज गति के कारण तेज हवा ने आग को भडका दिया। सुलगते हुए अंगारे लपटो में बदल गए। एक बार फिर मार्लो की ही नजर इस आग पर सबसे पहले पडी। स्टीमर से जूडिया को जिन रस्सियों ने बांध रखा था, वे भी जल गईं। नाविकों के पैरो के नीचे की लकड़ी भी गर्म हो गई। स्टीमर रोका गया। स्टीमर के कप्तान ने चिल्ला कर अपील की कि जूडिया के नाविक स्टीमर मे आ जाएं क्योंकि अब वह जहाज नही बचेगा। उधर जूडिया के कप्तान का इरादा कुछ और ही था। उसका जवाब था कि जब तक जूडिया का अंत नही हो जाता उसे कोई नहीं छोड़ेगा। इस पर डाक ले जाने वाले उस स्टीमर के कप्तान ने चीखकर कहा कि वह इंतजार नहीं कर सकता क्योंकि उनके पास जरूरी डाक है। जूडिया के नाविक अपने सामान के बण्डल लिए खड़े थे लेकिन कप्तान का रुख देखकर उन्होने चुपचाप उन्हे वापिस रख दिया। जूडिया की सहायता करने वाला स्टीमर डाक लेकर सिंगापुर की ओर चला गया।

कप्तान के आदेश पर नाविकों का दल बची-खुची चीजें ठीक-ठाक करने लगा। आधे घण्टे तक यह संघर्ष और चला। अंततः सभी ने उम्मीद छोड़ दी और लोग या तो जूडिया को अंतिम विदाई देने के लिए शराब, रोटी और पनीर से अपनी थकान और निराशा मिटाने लगे या कप्तान की तरह पैर फैला कर सो गए।

थोड़ी देर बाद मार्लो ने कप्तान को जगाया और जहाज छोडने का निवेदन किया। सबसे पहले उस नाविक ने जहाज छोडा, जो सबसे कम उम्र का था। धीरे-धीरे जूडिया के नाविक नावो मे बैठ गए लेकिन फिर भी उन्होने अपनी यात्रा प्रारम्भ नहीं की। वे जूडिया को जलते हुए देखते रहे। समुद्र का बूढ़ा जहाज धू-धू करके जल रहा था। गोदी में उपेक्षा की स्थिति में पड़े हुए सड़-गल कर नष्ट हो जाने की अपेक्षा यह अंत कहीं अधिक गौरवपूर्ण था।

☐ ☐ ☐

जब जूडिया पूरी तरह नष्ट हो गया और उसके जले हुए अवशेष समुद्र पर तैरने लगे, तब नाविको ने भारी मन से अपनी नावें खेनी शुरू की। खुली नावो पर उदासी भरे 16 घण्टे किसी तरह बीते, तब कहीं जाकर नाविकों को सागर में एक अन्य स्टीमर की रोशनी दिखाई पड़ी। कप्तान ने मार्लो को आदेश दिया कि वह उस स्टीमर की ओर बढ़कर उससे सहायता मांगे। स्टीमर के कप्तान ने पहले समझा कि मार्लो उसे परेशान करने के लिए आवाज दे रहा है, इसलिए उसने बदले में उस पर गालियों की बौछार कर दी। जैसे ही उसे पता चला कि वे लोग जलते हुए जहाज जूडिया के बदकिस्मत नाविक हैं, उसने सहायता के द्वार खोल दिए। थके और टूटे हुए मन से मार्लो और उसके साथियों ने लम्बे अरसे के बाद स्टीमर की सुरक्षित गोद में पहली नींद ली। वे दुनिया के पूर्व तट पर उतरे जरूर लेकिन उन्हे लेकर सफर पर निकला जूडिया उनके साथ नहीं था।

मार्लो की युवावस्था का यह अनुभव देखे गए एक चित्र की तरह उसे जीवन भर याद रहा। उसके हृदय मे कोई गिला-शिकवा नही था। वह उसे अपनी जवानी की परीक्षा करने वाली कसौटी मानता रहा। वह जूडिया को एक पुराना खटारा जहाज न मान कर उसके जीवन को आग में लोहे की तरह तपा कर फौलाद बनाने वाले एक साथी की तरह मान्यता देता रहा। जब तक उसकी स्मृति में जूडिया पर बिताए सुख, दुख, आनंद और रोमांच के क्षण कौंध जाते। अपनी नम आंखों मे अपनत्व का भाव लिए वह जूडिया के बारे में ऐसे सोचता, जैसे कोई अपने ससार से विदा ले चुके प्रिय मित्र को याद करता है।

■ ■

आजादी की सुरंग

वैसे तो द्वितीय विश्वयुद्ध में जर्मनों की कैद से भागने के लिए मित्र राष्ट्रों के युद्धबंदियों ने कई बार अद्भुत प्रयास किए लेकिन 'स्तालाग लुपत-*III* युद्धबंधी शिविर से भागे 76 वायुसैनिकों द्वारा बनाई गई "हैरी" नामक सुरंग की कहानी पलायन-कथाओं में सर्वश्रेष्ठ और अभूतपूर्व है।

इस सुरंग ने पलायन का विश्व रिकार्ड बनाया। इसी सच्ची कहानी पर आधारित एक फिल्म दुनिया भर में काफी लोकप्रियता भी हासिल कर चुकी है।

8

जर्मनी। बर्लिन और ब्रेस्लाड के बीच स्थित एक युद्धबंदी शिविर स्तालाग लुफ्त-III। मित्र राष्ट्रों के 10 हजार वायुसैनिक इसी शिविर मे बदी थे। 25 मार्च, सन् 1945 के सुबह 6 बजे अचानक कैम्प में अफरा-तफरी मच गई। कैम्प का विशाल अहाता जर्मन संतरियों के उत्तेजित बूटों की आवाज से गूंज उठा। शिविर मे ब्लाक 104 के चप्पे-चप्पे को संतरियों द्वारा छाना जाने लगा। संतरी राइफलें ताने हुए चिल्ला रहे थे—"बाहर! बाहर!! हर कैदी बाहर निकल आए।" जैसे ही कैदी अपने-अपने कैम्प से बाहर निकलते, संतरी उन्हें कपड़े-जूते उतार कर नंगा होने का हुक्म देते। खुले अहाते में बर्फ पड रही थी। ऐसी स्थिति में भी कैदियों को नंगा होना पड़ता। फिर कपड़ों तथा अन्य चीजों की बारीकी से तलाशी ली जाती।

यह खाना-तलाशी चल ही रही थी कि एक जर्मन एड्जुटेण्ट दौड़ता हुआ आया और कैदियों से अनुरोध करने लगा कि वे उस सुरंग का दरवाजा खोल दे, जो उन्होंने अपने भाग निकलने के लिए बनाई थी। दरअसल यह खाना-तलाशी इसीलिए हो रही थी, क्योंकि जर्मनों को उस सुरंग का पता चल गया था। गलती से एक जर्मन संतरी उस सुरंग में घुस गया था और अब उसे बाहर निकलने का रास्ता नहीं मिल रहा था। जर्मनों को डर था कि कहीं उसका दम न घुट जाए। उन्होंने सुरंग का गुप्त द्वार ढूंढ़ने की कोशिश की लेकिन असफल रहे। अब उनके सामने कैदियों से आग्रह करने के सिवाय कोई चारा भी शेष नहीं था।

अंतत: कैदियों ने तय किया कि अब उन्हे सुरंग का गुप्त द्वार बता ही देना चाहिए। गुप्त द्वारा खोला गया और जर्मन संतरी को सुरंग से सुरक्षित निकाल लिया गया।

परंतु पूरे कैम्प में से 76 कैदी भाग चुके थे। यह पता लगते ही द्वितीय विश्वयुद्ध के इतिहास की सबसे बड़ी खोज प्रारम्भ हो गई। रेडियो द्वारा नागरिकों को सूचना दे दी गई कि वे भी भगोड़ों पर कड़ी नजर रखें। एस. एस. के दस्ते, गेस्टापो के जासूस दल, लुफ्तवाफे (वायुसेना) के सैनिक तथा नौसैनिकों का सम्मिलित विशाल खोजी दस्ता सक्रिय हो उठा।

जर्मनों की घबराहट और शर्मिंदगी को आसानी से समझा जा सकता था। स्टालाग लुफ्त-III के वायुसैनिक कैदियों ने मिलकर जो सुरंग बनाई थी, उससे 76 कैदी भाग निकले थे और यह अपने आप में एक विश्व रिकार्ड था।

यह सुरग कैसे बनी? इसे खोदने वाले कौन थे? इसमे कितना समय लगा? इससे

भागने वाले युद्धबंदियो में से कितने आजादी का सुख उठा पाए और कितने जर्मन फाईरिंग स्क्वाड्स का शिकार हो गए?

यह कहानी आजादी की प्रबल कामना के अधीन धीरे-धीरे योजना बना कर लम्बे समय तक काम करते रहने की कहानी है। यह एक ऐसी योजना की गाथा है, जिसकी सफलता की गुंजाइश बहुत कम थी और जिसे पूरा करने के बीच कई बार असफलता और निराशा हाथ लगी। रॉयल आस्ट्रेलियन एयर फोर्स के फ्लाइट लेफ्टीनेण्ट पाल ब्रिखिल के माध्यम से 'आजादी की सुरंग' से संबधित यह पूरी कहानी जब प्रकाश मे आई तो रातों-रात विश्व-प्रसिद्ध हो गई।

☐ ☐ ☐

सन् 1943 के बसंत में स्तालाग लुफ्त-III की स्थापना हुई। अप्रैल में इस शिविर का क्षेत्रफल बढ़ा दिया गया। अब इसमें उत्तर की ओर एक अहाता और जुड़ गया था। इस नए हिस्से मे 700 युद्धबंदी रखे गए थे। नए अहाते का निर्माण करने में मदद करने वाले युद्धबंदियो ने निर्माण कार्य में सुरंग खोदने की मानसिकता के साथ भाग लिया था। उन्होंने अहाते का पूरा फासला नाप कर अपने दिमाग में रख लिया था। यह अहाता वर्गाकार था और उसकी लम्बाई-चौड़ाई 1-1 हजार फुट थी। दो ऊंची कांटेदार तारो की सीमाएं बनी हुई थीं, जिनके बीच 5 फुट का अंतर था। इस 5 फुट के अंतर को भी कांटेदार तारों की कुण्डलियों से भर दिया गया था। इसके भी 10 गज अदर एक चेतावनी का तार लगा था। उससे आगे कदम रखने पर गोली मारी जा सकती थी। अहाते में कई 15-15 फुट ऊंचे संतरी टावर थे, जिन पर सर्चलाइटें तथा मशीनगनें लगी हुई थीं। कांटेदार बाड़ के बाहर 25 गज के बाद चीड़ के घने वृक्ष थे, जिससे कैदियों का बाहर की दुनिया से कोई भी सम्पर्क कट जाता था। ये घने वृक्ष भाग निकलने में भी सहायक बन सकते थे।

जैसे ही इस शिविर में कैदी पहुचे वहां की दीवारों पर क्रिकेट और सॉफ्ट बाल खेलने के इच्छुक खिलाड़ियों का पजीकरण करने हेतु नोटिस लग गया। इस नोटिस के नीचे 'एक्स' के दस्तखत थे।

दरअसल यह 'एक्स' पलायन के लिए बनाया गया संगठन था, जिसका मुखिया एक लम्बा दक्षिणी अफ्रीकी स्क्वाड्रन लीडर रोजर बुशैल था। बुशैल को दो बार भाग निकलने का पूर्वानुभव था। वह दोनों बार पकड़ा गया था लेकिन आजाद होने की अदम्य लालसा तथा किसी योजना पर बिना ढिलाई के सतत काम करने की क्षमता ने ही रोजर बुशैल को 'एक्स' का मुखिया बना दिया।

देखते-देखते 500 कैदियों ने सुरंग खोदने की कार्यवाही मे हिस्सा लेने के लिए अपने नाम रजिस्टर्ड करा दिए। यह तय किया गया कि तीन सुरंगे खोदी जाएंगी, जिनके नाम होंगे–'टाम', 'डिक' व 'हैरी'। इनमें किसी न किसी सुरंग को तो सफलता मिलेगी ही। 'टाम' की खुदाई ब्लाक 123 से, डिक की खुदाई ब्लाक 122 से और 'हैरी' को ब्लाक 104 से खोदा जाना था। इन सुरंगो के द्वार कैदियों की निवास

झोपड़ियों में बनाए जाने थे। प्रत्येक झोपड़ी सौ फुट लम्बी व स्नान घर, शयन कक्ष और रसोई घर से युक्त थी। इनकी दीवारें जमीन से एक फुट ऊपर थीं, ताकि जब भी कोई संतरी चाहे झांककर बंदियों की गतिविधियों को देख सके।

सुरंग खोदने के लिए तीन टीमें बनाई गईं। इनके मुखिया अनुभवी तथा वरिष्ठ सुरंग खोदने वाले थे। 500 स्वयंसेवकों में जितने इंजीनियर, बढ़ई व खनिक थे—उन्हें इन टीमों में लिया गया। एक दर्जियों की टीम बनाई गई, जिन्हें भागने वालों का वेश बदलने के लिए कपड़े तैयार करने थे। कुछ जालसाजी के माहिर सैनिकों को इस बात का जिम्मा दिया गया कि वे भागने वालों के लिए नकली दस्तावेज तैयार करेंगे। धाराप्रवाह जर्मन बोलने वालो से कहा गया कि वे संतरियों को अपना दोस्त बनाएं। उन्हें खाने-पीने की चीजों की रिश्वत दें ताकि वे जरूरत की चीजो को बाहर से ला सकें। जिन बंदियों में कोई विशेष योग्यता नही थी, उन्हे सुरंगों से निकली रेत और मिट्टी को ठिकाने लगाने का काम सौंपा गया। इन स्वयंसेवकों को 'पेंग्विन' का नाम दिया गया। संतरियों पर निगाह रखने का जिम्मा जिन बंदियों पर था, उन्हें 'स्टूज' कहा गया।

□ □ □

बंदियों की एक पोलैण्डवासी टीम ने कैम्प के निर्माण में बच रहे कुछ सीमेण्ट को चुरा लिया। उन्होंने दो वर्गफुट का एक चौकोर कंक्रीट और सीमेण्ट का टुकड़ा बनाया। इस टुकड़े की मदद से ब्लाक 122 में 'डिक' का गुप्त द्वार बनाया गया। इस टुकड़े को सरका कर द्वार में उतरा जा सकता था। ब्लाक 104 के कमरा नं. 23 में 4 वर्ग फुट की जगह में बने चबूतरे पर रखे हीटिंग स्टोव के नीचे 'हैरी' का गुप्त द्वार बनाया गया। ब्लाक 123 के फर्श में दो वर्ग गज का एक छेद किया गया और उस पर कंक्रीट और सीमेण्ट का सरका कर हटाया जा सकने वाला एक स्लैब लगाया गया। वह 'टाम' का खुफिया द्वार था।

अब बंदियों को सुरंग बनाने का काम करना शुरू करना था। यह एक बेहद मुश्किल काम था। उन्हें दिशा, फासला तथा कोण का निर्धारण बिना किसी यांत्रिक सुविधा के ही करना था। मोटी-मोटी त्रिकोणमिति के आधार पर उन्होंने निर्णय लिया कि सुरंग 25 फुट से ज्यादा गहराई में खोदी जानी चाहिए ताकि जर्मनो के साउण्ड डिटेक्टर यंत्र किसी किस्म की ध्वनि न पकड़ सकें। इसलिए सुरंग के गुप्त द्वार से 30 फुट की गहराई तक सीधी खुदाई की गई। फिर सुरंग को बाहर चीड के जंगलों की तरफ खोदना चालू किया गया। रेतीली मिट्टी को खोदना कठिन नहीं था लेकिन असली समस्या थी सुरंग की दीवारों और छतो को मजबूती देना। इसलिए प्रत्येक बंदी ने अपने-अपने लकडी के बिस्तरो की दो-दो स्लेटे इस समस्या को हल करने के लिए दी। धीरे-धीरे जब सुरंग आगे बढ़ी तो बिस्तरो की और स्लेटों की जरूरत पड़ने लगी। ऐसी स्थिति आने वाली थी जब बंदियों को लगभग खोखले बिस्तरो पर सोने का कठिन कारनामा करना पड सकता था।

मई, सन् 1943 मे सुरंग की खुदाई प्रारम्भ हुई। बंदियों की सुबह से गिनती से लेकर शाम की गिनती तक, दोपहर के भोजन को छोड़कर, लगातार सुरंगो की खुदाई जारी रहती। सबसे ज्यादा मुश्किल काम, सुरंगों से निकलती चमकदार रेतीली मिट्टी को बाहर अहाते की धूसर मिट्टी में खपाना था।

पहले-पहले कुछ रेतीली मिट्टी बंदियों द्वारा बनाए गए छोटे-छोटे बगीचों की मिट्टी मे मिलाने की कोशिश की गई। जब उससे काम न चला तो दर्जनों तौलियों की छोटी-छोटी नीचे से खुलने वाली थैलियां बनाई गई। 'पेंग्विन' बंदी मैदान में टहलने निकलते तो उनकी जेबों में घुसे हुए हाथों में इन थैलियों की डोरियां होतीं और थैलिया टांगों के सहारे पैण्ट के नीचे लटकी होतीं। उनके साथी मैदान में खेल-कूद और गहमा-गहमी प्रारम्भ कर देते तथा मौका मिलते ही जेबो में पड़े हाथ डोरियां खीच देते। मिट्टी धीरे से खिसक कर जमीन पर गिर जाती। वे जूतों की मदद से मिट्टी के रग को जमीन के रंग मे मिला देते। इस तरह 150 'पेंग्विन' टनों मिट्टी जमीन पर बिखेरने में सफल हो गए और वह भी जर्मन संतरियो की ठीक नाक के नीचे।

□ □ □

शिविर में आई आधुनिक यंत्रशास्त्र संबधी पत्रिका से घर में बने हुए एयर पम्प की तरकीब सीख कर बंदी इजीनियरों ने आसान किस्म के पम्प बना डाले, जिससे सुरंगो मे ताजी हवा पहुचने की समस्या सुलझ गई। बंदियों के इलेक्ट्रीशियनों ने शिविर के विद्युतीकरण से बचे हुए तारों से सुरगो में रोशनी का इंतजाम किया। उन्होंने बिजली के सरकिट में छुपे हुए कनेक्शन बनाए। शिविर के गलियारों से बल्ब चुराए गए।

खुदाई करने वाली टीमों ने भी अपने काम का एक सुविधाजनक तरीका निकाल लिया। खुदाई करने वाला अपनी बगल तथा एक कोहनी के बल लेट जाता और पैर से खुदी हुई मिट्टी पीछे धकेलता जाता। दूसरा व्यक्ति उसके विपरीत बगल के बल लेट जाता। उसकी टांगें खुदाई करने वाले की टागों पर चढी रहतीं। यह दूसरा व्यक्ति मिट्टी को पेटी मे एकत्रित कर लेता तथा लकडी की पटरियो पर चलने वाली ट्राली पर रख देता, जिसमें बंधी रस्सी द्वारा पेटी को सुरंग के खुफिया द्वार पर खीच लिया जाता। इन ट्रालियों को मित्र बनाए गए सतरियों के माध्यम से स्मगल किए हुए सामान से बनाया गया था। ये दो मिट्टी भरी पेटियों अथवा एक व्यक्ति का बोझ आराम से ढो सकती थी। खुदाई करने वाले नंगे होकर या लम्बे अण्डरवियर पहनकर काम करते।

मई का महीना समाप्त होते-होते सुरंगें 70-70 फुट लम्बी हो गई। 'एक्स' के मुखिया ने 'टाम' को आगे बढाने का निर्णय लिया और इसके बाद 'टाम' की मिट्टी 'डिक' में भरी जाने लगी। 'टाम' जब सौ फुट तक खुद गई तो उसमें एक चौड़ी जगह बनाई गई, जिसमे सुरग खोदने वाले आसानी से जिधर चाहे घूम सकें। अब यह सुरंग सौ फुट तक और खुदनी थी, तब वह चीड के जगल के नीचे पहुंचती।

दस्तावेज तैयार करने वाले 'जालसाजों' की टीम में 50 हरफनमौला सैनिक थे, जिन्हें नकली पासपोर्ट तथा परिचय पत्र बनाने थे। इस टीम का नाम विख्यात इंग्लिश ट्रेवलिंग एजेंसी 'डीन एण्ड डासन' के नाम पर रखा गया। पहरेदारों को चाकलेट या काफी की रिश्वत देकर कई रंगों की स्याही, कलम, ब्रुश, विशेष किस्म का कागज, चुम्बक तथा रेडियो के कलपुर्जे, कैमरा, हथौड़ा, कीलें तथा नक्शे आदि मंगाने की व्यवस्था की गई। जब एक पहरेदार एक बार रिश्वत ले लेता तो वह दोबारा कोई चीज लाने से इंकार करने की स्थिति में नहीं रहता था क्योंकि तब कमाण्डेण्ट के पास उसकी शिकायत कर देने की धमकी दी जाती। इस हथकण्डे का प्रयोग करने से पलायन करने की योजना बनाने वाले कैदियों को काफी लाभ हुआ। पहरेदारों की वेतन पुस्तिकायें देख-देख कर परिचय पत्र बनाए गए। जूते की रबर की एड़ियां काट-काट कर नकली मुहरें बनाई गईं और बाइबिल के अस्तर फाड़ कर पासपोर्टों की जिल्दे बनाई गईं।

दर्जियों की टीम में 60 बंदी थे। रायल एयर फोर्स की वर्दियों से वे लुफ्तवाफे (जर्मन एयरफोर्स) की नकली वर्दियां बनाने मे लगे थे। 400 से ज्यादा बंदियों के लिए दस्तावेज, नकली वर्दियां व सादा कपड़े तैयार होने की प्रक्रिया में थे।

अचानक बंदियों को पता चला कि उनके कम्पाउण्ड के अमेरिकी कैदी 6 सप्ताह में दूसरे कम्पाउण्ड में स्थानांतरित किए जाने वाले हैं। अमेरिकनों ने सुरंग खोदने में बेतहाशा मेहनत की थी इसलिए यह तय किया गया कि 'टाम' को तेज रफ्तार से पूरा करके भाग निकला जाए। जून के अंत में जैसे ही 'टाम' का एक सिरा जंगल के नीचे पहुंचा, दुर्भाग्य से जर्मनों ने उस इलाके के पेड काटने शुरू कर दिए। दरअसल वे वहां एक नया अहाता बनाना चाहते थे। खतरा बढ़ गया था लेकिन अमेरिकनों की वजह से यह जोखिम उठाना भी स्वीकार किया गया। इस तरह 'टाम' की 260 फुट की खुदाई पूरी हो गई।

एक दिन जब संतरी ब्लाक 123 की तलाशी ले रहे थे कि अकस्मात एक संतरी ने 'टाम' के गुप्त द्वार को अपनी संगीन से भाप लिया। फिर क्या था। आनन-फानन में सुरंग ही नहीं वरन् पूरे ब्लाक 123 की छत ही डायनामाइट से उडा दी गई। यह कमर तोड देने वाली असफलता थी। अगस्त के अंत में अमेरिकन कैदियों को निराश होकर दूसरे अहाते में जाना पड़ा। अन्य कैदियो ने उन्हें विदाई की दावत दी, जिसमें खुद की बनाई हुई शराब पेश की गई।

☐ ☐ ☐

इस बीच में जमीन के ऊपर से भागने की एक कोशिश भी की गई। इसके लिए लकड़ी की नकली रायफलें बनाई गई, जो एकदम जर्मन रायफलों जैसी ही लगती थीं। 3 कैदी लुफ्तवाफे के अफसरों की वर्दियां पहन कर 25 अन्य कैदियों को शिविर के दरवाजे के बाहर कपड़ों में से जुएं निकालने के बहाने ले गए और सफलतापूर्वक फरार हो गए। इसी के कुछ मिनट बाद 6 युद्धबंदी अफसरों ने भी जब इसी तरह

भागने की कोशिश की तो वे पहचान लिए गए और पकड़े गए। इसके बाद सारे कैदियों को सात घण्टे तक परेड में खड़ा रहना पड़ा। तब कही जाकर भागने वाले तीन कैदियों का पता लगा। बाद में तीनो कैदी भी सुरक्षित इलाके में पहुंचने से पहले ही पकड लिए गए।

सन् 1944 की शुरूआत में बंदियों ने 'हैरी' सुरंग को आगे बढ़ाने का निश्चय किया। 'डिक' सुरंग 'टाम' की मिट्टी से भरी हुई थी। इसलिए इस तरफ ध्यान नहीं दिया गया। 'हैरी' की खुदाई करने से जो मिट्टी निकली, उसे मनोरंजन के लिए बनाए गए थियेटर में छुपाया गया क्योंकि उन दिनों जमीन पर बर्फ जमी हुई थी। 'हैरी' को 3 सौ फुट तक खोदा जाना था। इस बीच में शिविर मे लाउडस्पीकर लगाने आए जर्मन इलेक्ट्रीशियनों को धोखा देकर एक तारों का गुच्छा चुरा लिया, जिससे 'हैरी' में रोशनी की गई।

14 मार्च तक सुरग तैयार हो गई। 500 लोगों ने उसे तैयार करने मे परिश्रम किया था। गुप्त पर्चिया डालकर 220 कैदियों के नाम निकाले गए , जिनमें 20 को गुप्त मतदान द्वारा नामजद किया गया क्योकि उन्होने विशेष रूप से सुरंग पर मेहनत की थी।

24 मार्च की रात को पलायन किए जाने की घोषणा 'एक्स' के मुखिया रोजर बुशैल द्वारा की गई।

ठीक 7 बजकर 40 मिनट पर पहला पलायनकर्त्ता सुरंग मे उतरा। यह रोजर बुशैल था, जिसने एक सिलेटी रंग का सूट पहन रखा था और अपने अटैची केस के साथ वह एक चुस्त-दुरुस्त व्यापारी लग रहा था। शंका, जोखिम और धड़कते हुए दिलो के साथ एक-एक करके 76 युद्धबंदी सुरंग से बाहर निकल गए। पलायन का काम बहुत धीरे-धीरे हुआ। वेश बदले हुए तैयार बैठे पलायनकर्त्ताओं को बेचैनी के साथ पहलू बदलते हुए छोटी-छोटी बाधाओ के कारण इंतजार करना पड़ा। कोई मजदूर के वेश मे था, तो कोई जर्मन अफसर की वर्दी मे। बीच मे हवाई हमले का साइरन भी बजा, जिसकी वजह से पलायनकर्त्ताओं की गतिविधियां कुछ देर रुकी रहीं।

लेकिन 81वें पलायनकर्त्ता को सुरंग से निकलते हुए एक सतरी ने देख लिया। उसने फौरन अपनी रायफल का बोल्ट चढ़ाकर उसे लोड कर लिया। वह उसे गोली मारने ही वाला था कि एक अन्य पलायनकर्त्ता, जो पेडो मे छुपा था, कूदकर संतरी के सामने आ गया और जोर से चिल्लाया, "संतरी, गोली न चलाना। गोली न चलाना।" संतरी इस घटना से भौंचक्का रह गया। घबराहट मे उसने हवा में गोली दाग दी।

यह 'हैरी' सुरंग का अंत था। गार्ड की टार्च की रोशनी ने उसे सुरंग का मुहाना दिखा दिया था। उसने एक जोर की सीटी मारी और चारों ओर से संतरी दौड़ते हुए आ गए। उन पलायनकर्त्ताओं ने भी अपने हाथ ऊपर उठाकर समर्पण कर दिया, जो जंगल में छिपे हुए थे।

□ □ □

तकरीबन 2-3 दिन में अधिकांश पलायनकर्त्ता पकड़ लिए गए। जर्मनों ने 50 को गोली से उड़ा दिया तथा 8 को पुनः पकड़कर यातना-शिविर में भेज दिया गया। बाकी 15 कैम्प में वापस कैद कर दिए गए। जर्मनों ने जिनेवा समझौते का उल्लंघन करते हुए 50 पलायनकर्त्ताओं को गोली मारी थी। शायद वे युद्धबंदियो का मनोबल तोड़ देना चाहते थे लेकिन यातना शिविर के 8 युद्धबंदी जल्दी ही वहां से भी सुरंग बनाकर भाग निकले। बाद में पकड़े वे भी गए लेकिन तब तक द्वितीय विश्वयुद्ध में जर्मनों की हालत नाजुक हो चुकी थी, इसलिए उन्हें गोली नहीं मारी गई।

जिन पलायनकर्त्ताओं को गोली मारी गई थी, उनमें से एक रोजर बुशैल भी था, जिसने बड़े प्रतिभाशाली तरीके से 'एक्स' का संचालन किया था। इसके दो सप्ताह बाद भस्मीपात्र मे इन शहीदों की अस्थियां लाई गईं। युद्धबंदी अपनी बाहों पर काली पट्टी बांध कर उसी समय विरोध तथा शोक का प्रदर्शन कर चुके थे, जब उन्हे 50 को गोली से मार देने की खबर मिली थी। इस बार उन्होने इस भस्मीपात्र को स्मृति के रूप में सुरक्षित रख दिया।

जून मे स्तालाग लुफ्त-III में स्पेनी भाषा मे लिखा हुआ एक पत्र पहुंचा, जिसके नीचे नकली दस्तखत थे। जाहिर था कि एक डच पायलट सुरक्षित इंग्लैण्ड पहुच गया था। कुल तीन युद्धबंदी हैरी के माध्यम से भागने में सफल हो पाए।

स्तालाग लुफ्त-III में थोड़े ही दिनों बाद पुनः 'एक्स' का पुनर्गठन कर लिया गया। इस बार 'जार्ज' नामक सुरंग तैयार की गई। युद्धबंदी इस सुरंग से भागने ही वाले थे कि अचानक परिस्थिति पलट गई। सोवियत सघ की लाल फौज केवल 30 मील दूर रह गई थी। इस शिविर के युद्धबंदियों को शिविर से बाहर निकाल कर जर्मनो ने कई सप्ताह तक पैदल चलाया। 2 मई, सन् 1945 को लुबेक में ब्रिटिश द्वितीय आर्मी ने उन्हें आजाद कराया।

□ □ □

अगर सफलता के प्रतिशत के हिसाब से देखा जाए तो 'हैरी' की सफलता का प्रतिशत बहुत कम निकलेगा लेकिन पलायन के इस प्रयत्न के पीछे आश्चर्यचकित कर देने वाला जो अदम्य प्रयास और योजना मौजूद थी, उसने इसे द्वितीय विश्वयुद्ध के इतिहास में अमर कर दिया।

●○

गोरखा शौर्य और विक्टोरिया क्रास

"साहस मृत्यु है और भय जीवन है" जैसी रोमन कहावत के विपरीत गोरखा वीरों का कथन है, "कायर होने से मर जाना अच्छा है।"

जब-जब दुनिया में वीरता के पदकों में विक्टोरिया क्रास का नाम आएगा, तब-तब लोगों की जबान पर गोरखा शौर्य की कहानियां आती रहेंगी। गोरखाओं ने द्वितीय विश्व-युद्ध में इम्फाल के मोर्चे पर जापानियों के तथा अफ्रीका के मोर्चे पर हिटलर के जनरल रोमेल की फौज के छक्के छुड़ा दिए थे।

'आयो गोरखाली' के नारे ने सारी दुनिया में गोरखों के खिलाफ लड़ने वाली फौजों के दिलों में दहशत पैदा कर दी थी। आज भी गोरखे पहाड़ी युद्ध के सर्वश्रेष्ठ योद्धा माने जाते हैं। उनकी खुखरी की मार और जान पर खेल जाने का स्वभाव, किसी भी सेनापति को मिलने वाली यह अतिरिक्त सुविधा है, जो केवल गोरखे ही दे सकते हैं।

दिसम्बर, सन् 1943। द्वितीय विश्वयुद्ध अपनी चरम सीमा पर था। जापानी बर्मा पर विजय प्राप्त करके इम्फाल की ओर बढ़ना शुरू कर चुके थे। अपनी विलक्षण सैनिक सूझ-बूझ के कारण वे जीत पर जीत हासिल करते चले जा रहे थे लेकिन ब्रिटिश सैन्य रणनीतिज्ञ हर कीमत पर इम्फाल को बचाने के लिए कटिबद्ध थे। प्राकृतिक सौंदर्य से भरपूर, ये पहाड़ियां सैनिक दृष्टि से भी अति महत्वपूर्ण थीं। पहाड़ियों की ढलानें 12 फुट ऊंची घास से ढकी हुई थीं।

कैमरून के 48वीं ब्रिग्रेड ने, जिसे रायल गोरखा रायफल्स भी कहा जाता था, आसवर्न हेगले के नेतृत्व में कई बार जापानियों को करारी टक्कर देकर, उन्हें नाकों चने चबाने के लिए मजबूर कर दिया था। इसी टुकड़ी का हवलदार गज घाले नाम का गोल-मटोल, मुस्कराते चेहरे और पतली मूंछों वाला गोरखा था। वह युवा सैनिकों की एक पलटन की कमान सम्भाले हुए था। अब तक उसकी पलटन को गोलियों की बौछार का सामना नहीं करना पड़ा था। मई के अंतिम दिनों में उसे शत्रु के कब्जे में जा चुकी एक चौकी वापस लेने की जिम्मेदारी मिली।

सीधी ढलानों से दोनों तरफ घिरी तथा किसी भी प्रकार की हरियाली से रहित एक पतली-सी पहाड़ी ही उस चौकी पर कब्जा करने की कुंजी थी। पहाडी की चोटी के साथ तीन टीले थे। पहले दो टीलों पर आसानी से कब्जा किया जा सकता था। 2-3 फर्लांग पर मौजूद तीसरे टीले पर जापानियो की पूरी फौजी ताकत मौजूद थी। स्वाभाविक था कि गज घाले की पहली कोशिश नाकाम रहती।

गोरखा पलटन फिर भी लगातार बढ़ती रही। कई सैनिक धराशायी हो गए पर लगातार आगे बढ़ने के कारण जल्दी ही जापानियो से उनके हाथो-हाथ युद्ध की नौबत आ गई। अंत में जापानियों को भागना पड़ा। पूर्वी बाशा नामक टीले पर गोरखा सैनिकों का कब्जा हो गया। इस जीत में गज घाले का अद्‌भुत पराक्रम सर्वाधिक उल्लेखनीय रहा। अनेक स्थानों पर पहाडी 5 गज से ज्यादा चौड़ी न थी लेकिन गज घाले ने बढ़ते कदमो को थमने न दिया। शत्रु से 20 गज की दूरी पर पहुंचने के समय गज घाले की बांह, सीना और टांग गोलाबारी से घायल हो चुकी थी, लेकिन गज घाले शत्रु के गढ़ मे घुसे चले गए। उसकी बहादुरी तथा साहस ने उसकी पलटन को महान् प्रेरणा प्रदान की। गज घाले के गले से 'आयो गोरखाली' का प्रचण्ड नारा निकल रहा था। इसी नारे की आन रखने के लिए उसने अपने प्राणों की भी परवाह नहीं की। हवलदार गज घाले की इस महान् शूरवीरता के

लिए उन्हें विक्टोरिया क्रास से सम्मानित किया गया। इसी तरह रायल गोरखा रायफल्स के दो अन्य वीरों ने भी विक्टोरिया क्रास प्राप्त कर बहादुरी के इतिहास में अपना नाम स्वर्णाक्षरों में लिखाया।

गोरखाओं ने अपनी वीरता के लिए सारे विश्व में विशेष ख्याति प्राप्त की है। हिमालय की गोद में बसी नेपाल की इस हंसमुख जाति ने आधुनिक युद्ध कला के सर्वश्रेष्ठ योद्धाओं का दर्जा प्राप्त किया है। गोरखे हल्के सांवले रंग, मंगोल मुखाकृति तथा नाटे कद पर सुदृढ़ शरीर के होते हैं। पहाड़ी इलाकों में लड़ने के लिए गोरखाओ की सेना सर्वाधिक सक्षम मानी जाती है। उनका विशेष हथियार होती है 16 इंची खुखरी, जो जितनी आसानी से लकड़ी काट सकती है, उतनी आसानी से सिर भी काट सकती है। युद्ध करते समय गोरखाओं का प्रचण्ड उद्घोष होता है—"आयो गोरखाली"।

गोरखाओ की वीरता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि आज तक पूरे विश्व मे विक्टोरिया क्रास पाने वाले कुल 1351 योद्धाओं में से 10 योद्धा गोरखा जाति के थे। इनके अतिरिक्त 105 अंग्रेज सैनिकों ने, 20 भारतीय फौजियों ने, 17 आस्ट्रेलियायी फौजियों ने, 12 कनाडावासियों को, 9 न्यूजीलैण्डवासियों को, 3 दक्षिण अफ्रीकियो को, एक रोडेशियाई को व एक फीजीवासी को विक्टोरिया क्रास से सम्मानित किया जा चुका है। सन् 1914-18 तक हुए प्रथम विश्वयुद्ध में 1351 पदक विजेताओ मे से आधे पदक विजेता लड़े थे। द्वितीय विश्व युद्ध में केवल 182 लोगो को पुरस्कृत किया गया। कोरिया युद्ध में 4 तथा वियतनाम युद्ध में 4 वीरों को इससे अलंकृत किया गया। दक्षिण अफ्रीका के युद्ध में भाग लेने वाले दो डाक्टरों को भी विक्टोरिया क्रास मिल चुका है। एक पिता-पुत्र का जोड़ा व चार भाई भी इस पदक को प्राप्त करने का श्रेय प्राप्त कर चुके हैं।

विक्टोरिया क्रास जैसे विश्वप्रसिद्ध वीरता के उपलक्ष्य में मिलने वाले पदक की स्थापना सन् 1856 मे हुई थी। उस समय इंग्लैण्ड में महारानी विक्टोरिया का शासन था और ब्रिटेन विश्व का सबसे ताकतवर देश माना जाता था। विक्टोरिया क्रास देने मे कभी पद का ख्याल नहीं किया गया। यह एडमिरलो को भी दिया गया तथा साधारण जवानों को भी। जट लैण्ड के युद्ध मे वीरता प्रदर्शित करने वाले कार्नवाल को मात्र 16 वर्ष की उम्र में विक्टोरिया क्रास मिला। कांसे से बने इस पदक को जीतने का एक ही मानदण्ड रहा है—अद्भुत वीरता अर्थात् विपरीत परिस्थितियो में पराक्रम की चरम सीमा छू लेना तथा शौर्य की सभी ज्ञात सीमाएं तोड देना।

क्रीमिया के युद्ध मे जीती गई बंदूकों की धातु को पिघला कर कासे के इस पदक का निर्माण किया गया, जिसका आकार क्रास जैसा है। इस पर राजमुकुट तथा सिंह की आकृति खुदी हुई है और नीचे लिखा है, "शूरवीरता के लिए।"

विक्टोरिया क्रास का एक और विजेता था गोरखा बंदूकधारी सैनिक गंजू लामा, जिसकी वीरता ने जापानियों के छक्के छुडा दिए थे।

12 जून की बरसाती सुबह। मोर्टार और टैंको से गोलाबारी का एक दौर पूरा हो चुका था। पांच टैंकों के साथ जापान की पैदल सेना ने गोरखों पर हमला किया। टैंक सुरक्षा की अगली पंक्ति के समांतर चलते हुए गोरखों पर भयानक रूप से गोले बरसा रहे थे। तभी गोरखों की अन्य टुकड़ी मदद के लिए आ गई। इससे जापानियों का पक्ष अचानक कमजोर पड़ गया। देखते-देखते उनके पाचों टैंक बेकार कर दिए गए। गोरखों के प्रचण्ड हमले से उनकी दो पल्टने रोंद डाली गई। दुश्मन 200 गज अंदर और 300 गज लम्बाई के क्षेत्र में फैल चुके थे। उनकी बंदूकों ने गोरखों पर गोलियां बरसाना जारी रखा। टेलीफोन व रेडियो सम्पर्क टूट चुके थे।

जापानियों को अंतिम रूप से पराजित करने के लिए गोरखों की दो कम्पनियां भेजी गईं, जिनमें एक का सदस्य था गंजू लामा। गंजू लामा एक भीमकाय सैनिक था। वह सिक्किम के एक लामा परिवार में पैदा हुआ था लेकिन पिता के नेपाल मे बस जाने से उसे गोरखा ब्रिगेड में स्थान प्राप्त हो गया था।

जब दिन के ढाई बजे इन दो गोरखा कम्पनियों ने आगे बढ़ना शुरू किया तो जापानी टैंकों ने उनके रास्ते में गोलों की भयानक वर्षा शुरू कर दी। ऐसी स्थिति में गंजू लामा ने सोचा कि क्यो न जापानियों के छिपे हुए टैंको को बेकार कर दिया जाए। वह अपनी बदूक बाहों में दबाकर घुटनों के बल रेंग कर कीचड मे आगे बढने लगा। इसके लिए गजू ने किसी से भी आदेश लेने की जरूरत नहीं समझी। रेंगने की प्रक्रिया मे उसे दुश्मन ने देख लिया और उसे निशाना बनाकर हमला कर दिया। गंजू की एक टांग, दोनों बाहें, बाईं कलाई जख्मी हो गई लेकिन गंजू का आगे बढना न रुका। छिपे हुए जापानी टैंकों तक पहुचकर उसने उनके तीन टैंको को फुर्ती से बेकार कर दिया। इसके बाद गंजू अपनी कम्पनी में वापिस आ गया। उसने अपना प्रयास यहीं पर बद नहीं किया वरन् कुछ हथगोले लेकर उसने उन टैंको के चालकों को भी खामोश कर दिया।

गंजू लामा को उसके अप्रतिम वीरता के लिए विक्टोरिया क्रास मिला। उस क्षेत्र के सुप्रीम कमाण्डर लार्ड माउण्टबेटन का कहना था कि गंजू लामा को मिलने वाला विक्टोरिया क्रास सर्वाधिक महत्वपूर्ण था। गंजू के पराक्रम के फलस्वरूप जापानियो को अपनी हार की कीमत अपने 70 सैनिकों की जानो के रूप में चुकानी पड़ी थी।

ट्यूनिस मे अकरोत की घाटी जीत लेने के बाद समूचे अफ्रीका से नाजियो का सफाया हो जाना था। इसलिए जनरल मॉण्टगोमरी इस मोर्चे को जीतने के लिए काफी उत्सुक थे। हिटलर के जनरल रोमेल ने इस घाटी को अजेय समझकर यहां अपनी फौजे जमा दी थीं। घाटी के एक और भूमध्य सागर तथा मीलो तक पहाड़ियां थी, जिन्हें पार करके घाटी तक पहुंचना लगभग असम्भव ही था। शत्रु के पास 12 जर्मन और 26 इतालवी पैदल टुकड़ियां थीं। पीछे जर्मन टैकों को 15वीं टुकड़ी खड़ी थी। आगे के मोर्चे पर इतालवी टुकड़ियां थी।

मॉण्टगोमरी ने अपनी रणनीति के अनुसार टकर नामक बुद्धिमान अफसर को गोरखों के साथ फटनासा नामक पहाड़ी पर कब्जा करने के लिए भेजा क्योंकि इस पहाड़ी से नीचे की घाटी तो दिखाई ही पड़ती थी, इससे अन्य पहाड़ियों की अगली और पिछली स्थिति का अवलोकन भी किया जा सकता था। 5 अप्रैल को टकर के गोरखों ने प्रचण्ड हमला किया। सूर्यास्त के समय गोरखा सिगनल टुकडी ने जगह-जगह लाइट सिगनल लगा दिए थे, जिनके सहारे रात में गोरखा रायफल्स ने आक्रमण किया। गोरखा सिपाही रबर सोल के जूते पहने हुए थे इसलिए उनके पैरो की आवाज दुश्मन को नहीं सुनाई दे रही थी।

तभी आगे की इतालवी टुकड़ी ने गोलाबारी शुरू कर दी। हथगोलों, ब्रेन गनों व टामी गनों की आवाजें आने लगीं। इस भयानक परिस्थिति में भी गोरखा टुकडी बिल्ली की तरह दबे पांव पहाड़ की सीधी चढ़ाई तय करती रही। पहाडी चढ़ने में गोरखों का कोई मुकाबला नहीं कर सकता। अतः वे जल्दी ही चोटी पर पहुंच गए।

इन गोरखों में 35 वर्षीय सूबेदार लाल बहादुर थापा भी था। बंदूक और पिस्तौल से अचूक निशाना लगाने वाले थापा को फौज मे 17 वर्ष हो चुके थे। मजाकिया स्वभाव के इस सूबेदार के नेतृत्व में 14 सिपाहियों की एक छोटी टुकड़ी थी। उसे आगे की पहाड़ी पर कब्जा करना था ताकि फटनासा के द्वार पर पहुचा जा सके। टेढी-मेढ़ी पगडंडियों और कहीं-कही दो सौ फुट ऊंची चोटियों वाली इस पहाडी पर शत्रु की मशीनगनों से सारा रास्ता रुका हुआ था लेकिन लाल बहादुर थापा एक हाथ में पिस्तौल तथा एक में खुखरी लिए हुए चलते रहे और शत्रु की पहली चौकी पर पहुच कर दुश्मन के सभी आदमियों को खुखरी व संगीनों के प्रहारों से खत्म कर दिया।

मरने वालों की चीख सुनकर ऊपर की चौकियों से गोलाबारी तेज हो गई। थापा ने हर चौकी पर पीछे से हमला करने का रास्ता चुना। वह स्वयं एक मशीन गन पर कूद पड़ा और दो इतालवी सैनिकों को खुखरी से तथा दो को पिस्तौल से खत्म कर दिया। अंतिम चौकी तक पहुंचते-पहुंचते थापा की टुकड़ी में केवल दो सैनिक बचे थे लेकिन इन तीनो ने हिम्मत न हारी और आखिरी चौकी पर भी हमला बोल दिया। थापा की खुखरी दो शत्रु सैनिकों को चाट गई। उसके साथी सैनिको ने दो-दो की और सफाई कर दी। इस तरह थापा की वीरता से उस पहाडी पर कब्जा हो गया, जहां से शत्रु के गढ़ की ओर मुख्य मार्ग जाता था। छठी राजपूताना रायफल्स, रायल ससेक्स तथा 9वीं गोरखा टुकड़ी के लिए अब रास्ता साफ था।

अफ्रीका मे इस महत्वपूर्ण जीत को हासिल करने के बाद लाल बहादुर थापा को जनरल मॉण्टगोमरी ने विक्टोरिया क्रास दिलवाया, जो थापा जैसे वीर के शौर्य के लिए सर्वाधिक उपयुक्त सम्मान था।

●●

नारंगी के दोनों सिरों की खोज

कभी दुनिया आदमी के लिए केवल नारंगी की तरह चपटी थी लेकिन उसके दोनों चपटे सिरों के बारे में यह केवल अनुमान ही लगा सकता था। उत्तरी ध्रुव, दक्षिणी ध्रुव की खोज के प्रयासों की सफलता ने पहली बार ज्ञान के क्षेत्र के इस अंधकारमय कोने को प्रकाशित किया। राबर्ट ई. पेरी ने उत्तरी ध्रुव तथा कैप्टन स्काट व एमण्डसन ने दक्षिणी ध्रुव की खोज का श्रेय प्राप्त किया।

इस खोज के पीछे संकल्प, तैयारी, अभ्यास तथा लक्ष्य-वेध की अपराजेय अभिलाषा की महागाथा छिपी हुई है। खास-तौर से कैप्टन स्काट द्वारा दक्षिणी ध्रुव की यात्रा तथा असफल वापिसी तो मानवीय इतिहास की एक ऐसी घटना बन चुकी है, जिसका जिक्र हर नई पीढ़ी गर्व और शोक की मिली-जुली भावनाओं से करती है और भविष्य में भी करती रहेगी।

चारों तरफ बर्फ ही बर्फ के बीच नीले जल की चौड़ी गहरी खाइया थीं। 6 अप्रैल, सन् 1906 का दिन था। 52 वर्षीय राबर्ट ई. पेरी तथा उनके साथी हेसन, 60 स्लेज खींचने वाले कुत्तों के साथी धीरे-धीरे भयानक थकान और कष्ट के बावजूद आगे बढ़ रहे थे। अचानक राबर्ट ने अपनी कुतुबनुमा निकाली और दिशा का पता लगाने की कोशिश की। एकबारगी उन्हें लगा कि कुतुबनुमा बेकार हो गई है। वे घबरा गए। इसका मतलब था कि वे उत्तर की ओर जा रहे हैं या दक्षिण की ओर यह जानना नामुमकिन था। बर्फ के उस अथाह समुद्र मे खो जाना किसी भी व्यक्ति के लिए बेहद भयावह घटना थी, चाहे वह व्यक्ति राबर्ट जैसा साहसी ही क्यों न हो।

इस संकट की घड़ी में राबर्ट को सूझा कि कहीं मैं उत्तरी ध्रुव पर तो नहीं आ गया हूं। शून्य अक्षांश पर सभी दिशा-सूचक यंत्र बेकार हो जाते हैं। यह विचार दिमाग में आते ही राबर्ट का दल फुर्ती से उसी शून्य अक्षाश की खोज मे जुट गया। वे पागलों की तरह उस नन्हें भौगोलिक बिंदु की खोज कर रहे थे, जिसे छूने के लिए दल के नेता राबर्ट ने इस बर्फीले प्रदेश की कई असफल यात्राएं की थीं। अगर शून्य अक्षांश पर पहुंचने का उनका अनुमान सही साबित होता तो पिछले 20 साल से देखा जा रहा एक सपना साकार हो जाता। वही हुआ। कई स्थानों पर कोण नापते-नापते राबर्ट खुशी से उछल पड़े। शून्य अक्षांश मिल गया था। उत्तरी ध्रुव की खोज कर ली गई थी।

धरती के अनजाने क्षेत्रो को इस खोज के संबंध में मिली इस महान् सफलता के पीछे संकल्प, तैयारी, अभ्यास तथा लक्ष्य-बेध की उत्कट अभिलाषा की जो कहानी है, उसे कहे बिना इस सफलता का पूरा महत्व समझना मुश्किल है।

नारंगी की तरह गोल, तथा दोनों सिरो पर नारंगी की ही तरह चपटी पृथ्वी में आज से सौ वर्ष पूर्व न जाने ऐसे कितने कोने थे, जिनके बारे में मनुष्य केवल कल्पना कर सकता था। उत्तरी व दक्षिणी ध्रुव की 24-24 घण्टे की लम्बी रातों के बारे में केवल अनुमान लगाया जा सकता था।

कई साहसी व्यक्तियों ने कभी धन की लालसा से, कभी यश की इच्छा से और कभी मात्र वैज्ञानिक व खोजी मानसिकता से इन ध्रुवों की यात्राएं की। उत्तरी ध्रुव की यात्रा करने के तीन रास्ते थे। कनाडा के उत्तर से पश्चिम की ओर, ग्रीनलैण्ड के उत्तर से होकर तथा साइबेरिया के उत्तर से पूर्व की ओर से। राबर्ट ई. पेरी पहले

व्यक्ति थे, जिन्होंने उत्तरी ध्रुव पर जीत हासिल करने में सफलता प्राप्त की तथा मानव जाति की प्रगति का एक और रास्ता खोल दिया।

उनका जन्म सन् 1856 को अमेरिका में हुआ था। अध्ययन में राबर्ट ने अपनी प्रखर बुद्धि का परिचय तो दिया ही, साथ ही साथ खेल-कूद में भी वे सबसे आगे रहे। इंजीनियरिंग पास करने के बाद उनकी अमरीकी नौसेना मे एक उच्च पद पर नियुक्ति हो गई।

उन दिनों मानव ग्रीनलैण्ड के बारे मे भी ठीक से नहीं जानता था। राबर्ट की जानकारी के अनुसार ग्रीनलैण्ड उत्तर में ध्रुव तक फैला हुआ था। इसलिए उन्होंने अपनी प्रथम ध्रुव यात्रा सन् 1886 मे एक साथी को लेकर की और ग्रीनलैण्ड के अंदर सौ मील तक जाकर लौट आए। इसे राबर्ट ने 'अनुभव यात्रा' की संज्ञा दी।

नौसेना से अवकाश लेकर अपनी नव-विवाहिता पत्नी जोजेफीन, जो उनकी ही तरह साहसी थी, के साथ 1891 में राबर्ट ने पुनः कुछ वैज्ञानिकों को अपने दल में शामिल करके उत्तरी ध्रुव की ओर कदम बढ़ाए। ग्रीनलैण्ड में सूरज कुछ ही माह के लिए निकलता है अन्यथा रक्त जमा देने वाली सर्दी पड़ती रहती है। इंगलफील्ड की खाड़ी के पास जाकर राबर्ट ने अपने दल को छोटा बना लिया और 2 स्लेजें, 20 कुत्तों तथा ढेर सारी भोजन सामग्री के साथ वह आगे बढ़ते-बढ़ते उत्तरी ध्रुव से केवल 500 मील दूर रह गए। यहां से राबर्ट को फिर वापिस होना पड़ा। यह एक और 'अभ्यास यात्रा' थी। इन अभ्यास यात्राओं में राबर्ट ने 7 वर्ष लगाए। उनके पैरों की आठ उंगलिया बर्फ में गल गईं। पैर की हड्डी टूट गई, जिसे जुड़ने में दो वर्ष लग गए लेकिन उत्तरी ध्रुव खोजने का उनका सपना ज्यों का त्यों रहा।

इस दौरान राबर्ट ने ग्रीनलैण्ड के जीवन के बारे में पता लगाया। एस्किमो जाति से मित्रता की। उनके घरों के लिए लोहे की आपूर्ति करने वाला लोहे का पहाड़ खोजा। 90 टन वजन का आसमान से टूटा एक छोटा-सा तारा भी खोज निकाला, जो न्यूयार्क के अजायबघर में आज भी सुरक्षित है।

5 अप्रैल, सन् 1902 को राबर्ट ने ग्रीनलैण्ड का रास्ता छोड़कर कोलम्बिया अंतरीप से ध्रुव यात्रा शुरू की। इस बार उन्हें तीन एस्किमो मित्रो की मदद भी मिली हुई थी। यात्रा के प्रथम चरण ग्राण्टलैण्ड तक ही ये एस्किमो राबर्ट का साथ दे पाए। बर्फ के पहाड़ों को काटते हुए राबर्ट ने उत्तरी ध्रुव की तरफ बढ़ने की चेष्टा की लेकिन उन्हें एक बार फिर वापस लौट आना पड़ा। यह राबर्ट की अंतिम असफलता नहीं थी। तीन वर्ष बाद 85 उत्तर अक्षांश तक पहुंचने के बाद एक सप्ताह तक 50 मील प्रति घण्टे की रफ्तार से चलने वाली बर्फ की आंधी ने एक बार फिर राबर्ट को उनकी अंतिम असफलता से परिचित कराया।

जुलाई, सन् 1908 को राबर्ट का जहाज बर्फीले समुद्र को काटता हुआ पहले से बनाए पड़ाव पर पहुंचा, जहां अभियान दल को जाड़े का समय बिताना था। जाड़ा खत्म होते ही उन्होंने कुत्तों को स्लेज मे जोत दिया। इस बार पूरा दल तीन हिस्सों

में बंटा था। हर टुकड़ी में तीन-तीन लोग थे। आगे की टुकड़ी पर्याप्त खाद्य सामग्री, बढ़िया कुत्तों तथा दूसरे सामान के साथ ध्रुव से 150 मील दूरी पर पहुंच गई। यह टुकड़ी अपने मार्ग में निशान लगाती आई थी ताकि पीछे वाले दलों को परेशानी न हो। 88 अक्षांश पर पहुंचने के बाद राबर्ट का एक साथी बाब लौट गया। केवल हेंसन ही उनके साथ रह गया था। 5 अप्रैल को वे ध्रुव के निकट तो पहुंच गए लेकिन थकान ने उन्हें आगे बढ़ने से रोक दिया। उन दोनों ने एक दिन विश्राम किया और सुबह फिर उत्तरी ध्रुव की ओर बढ़ चले। तभी कुतुबनुमा के खराब हो जाने का भ्रम होने की ऐतिहासिक घटना हुई। शून्य अक्षांश मिलते ही राबर्ट ने अमेरिका का झण्डा एक बर्फ के टुकड़े पर गाड़ दिया। वहां खोजी दल ने 30 घण्टे बिताए। उस वीराने में भी वे खुशी से नाच उठे। उन्होने गीत गाए, अपनी सफलता पर खुद तालियां भी बजाईं।

जुलाई के अंतिम सप्ताह में जब राबर्ट दल ने अमेरिका की धरती पर कदम रखा तो वहां उत्तरी ध्रुव विजेता का भव्य स्वागत किया गया। राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने स्वयं राबर्ट को सम्मानित किया। उन्हें नौसेना का रियर एडमिरल बना दिया गया। यह केवल राबर्ट की नहीं, वरन् पूरे विश्व की जीत थी। जल, थल और वायु के रहस्यों को धीरे-धीरे जान रहे मनुष्य ने अपने ज्ञान में बर्फ की दुनिया का अध्याय भी जोड लिया था।

□ □ □

अभी पृथ्वी के दूसरे सिरे की खोज बाकी थी। दक्षिणी ध्रुव, जहां उत्तरी ध्रुव से भी ज्यादा सर्दी पड़ती है, वहां पहुंचना और भी खतरनाक है। दक्षिणी ध्रुव का धरातल 9000 फुट ऊंचा है तथा वहां गर्मियों में तापमान शून्य के आस-पास रहता है।

दस दिन से भयंकर आंधी और बर्फ की वर्षा जारी थी। एक कदम चलना असम्भव था और उनका भोजन गोदाम 11 मील दूर था। कप्तान स्काट ने आगे बढ़ने की कोशिश की लेकिन असफल हो गए। निराश होकर वह डेरे में वापस आ बैठे और डायरी लिखने लगे। अब उन सभी को अंत की प्रतीक्षा थी। दक्षिणी ध्रुव से वापस लौटते हुए कप्तान राबर्ट स्काट और उनके साथियों के सिर पर दुर्भाग्य और मृत्यु की छाया मंडरा रही थी।

7 माह बाद जब स्काट के दल को तलाश करने आए लोगों को इस डेरे में बर्फ के नीचे से तीन शव मिले। उन्हें स्काट के कोट की जेब से वह डायरी भी मिली, जिसमें ध्रुव की दुखांत यात्रा का पूरा हाल लिखा हुआ था।

उत्तरी ध्रुव की यात्रा और उसकी सफलता विश्व के लिए अगर एक सुखद कहानी है तो दक्षिणी ध्रुव की यात्रा की कहानी इतनी ही दुखद। मानव की इस विजय में कप्तान स्काट का अमर बलिदान भी शामिल है। वैसे कप्तान स्काट को दक्षिण ध्रुव पर कदम रखने वाला पहला व्यक्ति नहीं माना जाता क्योंकि जब स्काट के कदम दक्षिणी ध्रुव पर पड़े तो उससे पहले ही एक स्लेज पर एक झण्डा लहरा रहा

चौगढ़ का नरभक्षी और जिम कारबेट

जिम कारबेट का नाम कौन नहीं जानता। इस महान् शिकारी, लेखक तथा प्रकृति विज्ञानी ने कुमायूं की पहाड़ियों की भोली-भाली जनता को नरभक्षी बाघों के आतंक से मुक्त कराया। उनकी स्मृति में नैनीताल की तराई में जिम कारबेट पार्क की स्थापना की गई है।

जिम कारबेट ने जिंदगी में जितने भी नरभक्षी बाघों का शिकार किया, उनमें चौगढ़ का नरभक्षी सबसे मक्कार और चालाक था। कारबेट की आंखों के सामने कई बार यह नरभक्षी आया, कारबेट ने उस पर दो बार गोलियां भी चलाईं—लेकिन नरभक्षी चालाक ही नहीं वरन् किस्मत का भी धनी था।

कारबेट को चौगढ़ के नरभक्षी का सफाया करने में पूरे एक वर्ष का समय लगा। 64 मासूम जानों के हत्यारे इस नरभक्षी के शिकार की कहानी रोंगटे खड़े कर देने वाली है।

बाघ ने भैंसे के सींगों से बचने के लिए उसकी बायीं तरफ समकोण बनाते हुए हमला किया। दो भारी शरीरों के धम्म से गिरने की आवाज हुई। हमले के बाद दृश्य यह था कि भैंसा स्थिर लेटा हुआ था और बाघ के शरीर का एक हिस्सा उसके ऊपर था तथा भैंसे की गर्दन उसके जबड़ो में थी। आमतौर पर यह माना जाता है कि बाघ गर्दन पर अपनी थाप से भयानक झपट्टा मारकर अपने शिकार के प्राण लेता है लेकिन यह धारणा गलत है। बाघ अपने दातों से शिकार को मारता है।

"अब बाघ का दायां हिस्सा मेरे सामने था। सुबह कैम्प से चलते समय मेरे पास .275 की राइफल थी। मैंने सावधानीपूर्वक निशाना साधा और फायर कर दिया। एकदम भैंसे की गर्दन छोडकर बिना कोई आवाज किए बाघ मुड़ा और छलांग मारकर बीहड़ों मे गायब हो गया। जाहिर था कि मेरा निशाना चूक गया,जिसके लिए मेरे पास कोई कारण भी न था। अगर बाघ ने मुझे या मेरी बंदूक की लपट न देखी होगी तो उसके पुनः आने की संभावना थी। यह सोच कर मैंने अपनी राइफल पुनः भरी और बैठकर बाघ की आहट लेने लगा।"

ये शब्द हैं जिम कारबेट के। पेशे से सैनिक, महान् शिकारी तथा प्रकृति विज्ञान के विशेषज्ञ। जिम कारबेट ने सन् 1925 से सन् 1930 तक कुमायूं के जंगलों मे 60 से अधिक नरभक्षी बाघों को मारकर वहां की जनता को उनके आतंक से असीम राहत प्रदान की थीं। जिम कारबेट जंगली जानवरों को मारकर आनंद उठाने वाले शिकारी नहीं थे। उन्होंने केवल उन बाघों को ही मारा, जो किसी शिकारी की गोली से घायल हो जाने के बाद नरभक्षी बन गए थे। जिम ने प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान कुमायूं की पहाडियों से 5000 जवानों को फौज में भर्ती किया तथा 70 वीं कुमायूं श्रमिक टुकड़ी का फ्रांस में नेतृत्व भी किया था। द्वितीय विश्वयुद्ध मे उन्होंने अंग्रेज फौजों को जंगल-युद्ध की कला सिखाई। इसी उपलक्ष्य में उन्हें लेफ्टीनेण्ट कर्नल का ओहदा प्रदान किया गया था।

सन् 1918 के आस-पास कुमायूं में नरभक्षी बाघों का आतंक इतना बढ़ गया था कि उन्होंने एक वर्ष मे 525 व्यक्ति मार डाले थे। सन् 1925 में जिम कारबेट ने कुमायूं को अपना कार्य-स्थल बनाया। उनके साहसपूर्ण कारनामों की स्मृति में सरकार ने आज भी नैनीताल की तराई में जंगली जानवरों के अभयारण्य के रूप में जिम कारबेट पार्क बनाया हुआ है।

ऊपर लिखे शब्द कारबेट द्वारा सुनाई गई उस कहानी के अंश हैं, जिसका रोमांचकारी तानाबाना स्वयं कारबेट ने चौगढ़ की उस बूढ़ी नरभक्षी शेरनी को मारने के लिए बुना था, जो अपनी मृत्यु से पहले सन् 1925 से सन् 1930 तक 64 व्यक्तियों का खात्मा कर चुकी थी। इस नरभक्षी को मारने में कारबेट को एक वर्ष से ज्यादा समय लगा और उन्हें दो बार शिकार का अभियान करना पड़ा।

□ □ □

चौगढ़ के नरभक्षी का आतंक समाप्त करने के लिए कारबेट ने सन् 1929 की फरवरी में जंगल के बीचों-बीच काला आगर के पास सरकारी बंगले को अपना पड़ाव बनाया। हाल ही में नरभक्षी ने एक 22 वर्षीय चरवाहे को अपना शिकार बनाया था। सुबह नाश्ता करते समय एक बुढ़िया कारबेट के पास रोती हुई आई और बोली कि इस दुनिया मे इस 22 वर्षीय पोते के अलावा उसका कोई नहीं था। बुढ़िया ने अपनी तीनों भैंसे कारबेट को दे दीं और अनुरोध किया कि इन भैंसों को भले ही नरभक्षी का चारा बना दिया जाए लेकिन उसके पोते की मौत का बदला नरभक्षी से अवश्य लिया जाना चाहिए। बुढ़िया के संतोष के लिए कारबेट ने उन भैंसों को स्वीकार कर लिया। हालांकि नरभक्षी के चारे के लिए भैंसे नहीं वरन् उनके कटरे (बच्चे) अधिक उपयुक्त होते हैं।

कारबेट को आस-पास के गांवों के सरपंचों ने बताया कि दस दिन पूर्व 20 मील दूर एक पहाड़ी के पूर्वी ढलान पर नरभक्षी बाघ देखा गया था। वहीं उसने एक किसान और उसकी बीबी का शिकार किया था।

दूसरे दिन जिम सामान ढोने वालों के साथ अपने शिकार की तलाश में रवाना हो गए। 18 मील चलने के बाद घना जंगल आ गया। जिम ने अपने आदमियों को पास के गांव में भेज दिया तथा उस जगह का अकेले ही निरीक्षण किया, जहां नरभक्षी ने शिकार किया था। भोजन करके जिम घुमावदार रास्ते से गहरी घाटियों के बीच होकर आगे बढ़े। रास्ते के दोनों ओर बड़ी-बड़ी चट्टानें थी। घनी कांटेदार झाड़ियां नरभक्षी के छिपने व हमला करने का आदर्श स्थान थीं। चलते-चलते शाम हो गई। अब आगे बढ़ना खतरे से खाली न था। बलूत के पेड़ पर अपनी बंदूक को भली-भांति बांधकर कारबेट उसी पेड़ पर सो गए। उन्हें अपने शिकारी जीवन में पेड़ों की डालो पर सोने की आदत पड़ चुकी थी।

कई घण्टे तक सोने के उपरांत पेड़ के नीचे तने की छाल खरोंचे जाने की आवाज से उनकी आंख खुल गई। जिम को यह समझने में देर न लगी कि भालुओं का एक पूरा परिवार अपना पेट भरने की जुगाड़ में है।

सुबह होने पर कारबेट उस गांव में पहुंचे, जिसे 5 एकड़ का जंगल साफ करके बनाया गया था। गांव के सभी निवासी डर से कांप रहे थे। जिस व्यक्ति ने नरभक्षी को ढलान पर देखकर शोर मचाया था, उसने बताया कि नरभक्षी के साथ एक और शेर है और वे दोनों जंगल में घुस गए हैं। गांव के लोग रात भर भय से शोर मचाते

रहे थे ताकि बाघ उनके गांव से दूर ही रहे। कारबेट ने फौरन समझ लिया कि नरभक्षी बाघिन है और उसके साथ उसका पूर्ण विकसित बच्चा भी है।

गांव वालों द्वारा स्वागत में लाया दूध पीकर जिम ने उनके गेंहू के खेत की फसल अपनी रखवाली में कटवाई तथा घाटी में उसी ओर चल पड़े, जिस ओर बाघ के जाने का संकेत मिला था।

जिम को नरभक्षी बाघ के दर्शन तभी हो सकते थे, जब वह उन पर ही हमला कर देता। तीन नदियो की उद्गम उस घाटी में 20 मील तक चारों ओर जंगल ही जगल थे। रास्ता तलाश करना बड़ा मुश्किल था। हां, पैदल चलते रहने का फायदा यह था कि चिड़ियों और हवाओं की मदद से बाघ का पता मिल सकता था। कारबेट ने घाटी का पूरा रास्ता तय कर लिया लेकिन नरभक्षी उन्हें नहीं दिखा। रात उन्होंने एक बड़े पेड़ की लम्बी-चौड़ी डाल पर सोते हुए बिताई और सुबह होते ही फिर घाटी छाननी प्रारम्भ कर दी। इस बार उन्होंने दलकनिया ग्राम का रास्ता पकड़ा, जहां उनके आदमी पहले से ही ठहरे हुए थे। रास्ते में उन्होंने चिल्लाते हुए कुछ चरवाहों से सुना कि उनकी एक सफेद गाय गायब है। नरभक्षी ने यह शिकार पश्चिम की ओर आधा मील की दूरी पर किया था।

जिम फौरन रास्ता बदल कर ढोरो के भागने वाले रास्ते पर चल पड़े। गाय को जिस जगह नरभक्षी ने शिकार बनाया था, उस जगह से उन्होंने उस रास्ते का पता लगा लिया, जिससे बाघ अपने शिकार को खींच ले गया था। कुछ ही दूर चलने पर जिम को लगभग 30 गज की दूरी पर कुछ अस्वाभाविक हलचल दिखाई पड़ी। जाहिर था कि दोनों शेर अपने शिकार का स्वाद ले रहे थे। जिम ने हवा में गाय की सफेद टांग भी लहराते देखी और बाघ की तेज गुर्राहट भी सुनी।

कई मिनट तक वह अपनी जगह पर स्थिर खड़े रहे। आगे बढ़ना इसलिए उचित न था क्योंकि यदि 30 गज का फासला पूरा करके वे एक बाघ को निशाना भी बनाते तो दूसरा निश्चित रूप से उन पर हमला कर देता। जिस जगह वह खड़े थे, वह आत्मरक्षा के लायक नहीं थी। जिम ने पास में स्थित 10-15 फुट ऊंची चट्टान पर रेंग कर चढ़ना शुरू किया। चट्टान के ऊपर पहुंचकर उन्होंने देखा कि एक बाघ अपने शिकार का पिछला हिस्सा खा रहा है तथा दूसरा अपने पंजे चाट रहा है। ध्यान से देखने पर उन्हें पंजे चाटते हुए बाघ का रंग हल्का लगा। इससे वह इस निर्णय पर पहुंचे कि यही बूढ़ी नरभक्षी बाघिन है। इसलिए उन्होंने अत्यंत सावधानी से उसी पर पहला निशाना लगाया। गोली लगते ही वह बाघिन धड़ाम से पीछे की ओर गिर पड़ी लेकिन उसका साथी गोली की आवाज से घाटी की ओर भाग खड़ा हुआ। इससे पहले कि जिम की उंगली दूसरा ट्रिगर दबाती, वह आंखों से ओझल हो चुका था।

मरे हुए बाघ के पास पहुंचकर जिम कारबेट को झटका-सा लगा क्योंकि जिसे वे पुरानी नरभक्षी शेरनी समझ रहे थे, वह तो उसका बच्चा था। यहां जिम के ही

शब्दों में उनके आश्चर्य और निराशा को व्यक्त करना उचित होगा—"एक ऐसी गलती जिसकी कीमत आने वाले 12 माह में 15 व्यक्तियों के प्राणों से चुकानी पड़ी तथा जिसके कारण लगभग मेरी भी जान चली गई होती।" बहरहाल, जिम ने यह सोचकर खुद को संतोष दिया कि बूढ़ी शेरनी का यह जवान बच्चा अवश्य ही शिकार में उसकी मदद करता होगा तथा भविष्य में वह भी निश्चित रूप से नरभक्षी बन जाता क्योंकि उसे भी लगातार मनुष्य के मांस का आहार मिल रहा था।

जिम कारबेट ने बड़ी कठिनाई से उस जवान शेर की खाल अपने कलम छीलने वाले चाकू से निकाली। उन्हें इस बात का भी डर था कि कहीं नरभक्षी बाघिन छिपकर उन पर नजर तो नहीं रख रही है। खाल निकालने में रात हो गई। इस बार जो पेड़ उन्होंने चुना, वह खासा तकलीफदेह था। पिछले 64 घण्टों से भूखे शिकारी को रातभर नींद नहीं आई। ऊपर से बारिश और होने लगी। सुबह होते ही वह शेर की खाल पीठ पर बांध कर दलकनिया ग्राम पहुंचे। उनका शरीर शेर की ताजी खाल के कारण खून से लाल हो रहा था। जिम को देखकर ग्रामीण चौंक उठे क्योंकि उन्हें विश्वास हो गया था कि जिम कारबेट को भी नरभक्षी ने अपना शिकार बना लिया है। दरअसल उस ग्राम में शायद ही कोई परिवार बचा था, जिसका एक न एक सदस्य नरभक्षियों का शिकार न बना हो।

□ □ □

जिम ने उस रास्ते में चारों भैंस के बच्चों को बांधने का फैसला किया, जिस पर नरभक्षियों ने पिछले तीन वर्षों में 20 व्यक्तियों का शिकार किया था।

अगले दस दिन तक कारबेट जंगल और भैंस के बच्चों की निगरानी करते रहे लेकिन उन्हें नरभक्षी के दर्शन नहीं हुए। ग्यारहवें दिन उन्हें खबर मिली कि उनके खेमे के ठीक ऊपर एक नरभक्षी ने गाय का शिकार कर लिया है। बाघ का अता-पता लगने की उम्मीद से जब वह वहां पहुंचे, तो उन्होंने महसूस किया कि गाय को मारने वाला बाघ नहीं वरन् तेंदुआ है। थोड़ी ही देर तक प्रतीक्षा करने के उपरांत तेंदुआ अपने शिकार स्थल की ओर फिर आया और आते ही कारबेट की गोली का निशाना बन गया। अभी कारबेट तेंदुए को परलोक भेजकर सांस ही ले पाए थे कि अचानक एक घबराई हुई तेज आवाज आई। एक व्यक्ति नीचे गांव से पहाड़ी पर दौड़ा-दौड़ा आया था। उसने बताया कि नरभक्षी ने गांव से आधे मील की दूरी पर एक औरत को मार डाला है।

तुरंत गांव पहुंचने पर जिम ने वहां अजीब दृश्य देखा। ग्रामीणों की भीड़ ने एक युवती को घेर रखा था, जिसके हाथ जमीन पर अपनी पीठ के पीछे एक तरह टिके हुए थे। उसके शरीर का सारा बोझ उन्हीं पर टिका था। युवती के कपड़े फटे हुए थे। वह जोर-जोर से सांस ले रही थी। उसके गले और चेहरे से खून बह कर स्तनों के बीच में जमा हो रहा था। नरभक्षी ने खुले मैदान में ग्रामीणों के सामने उस पर

हमला किया था। उस युवती का पति भी मौके पर मौजूद था। शोर के कारण नरभक्षी अपना शिकार अधूरा छोडकर भाग गया। ग्रामीणों ने तो युवती को मरा ही समझ लिया था तथा जिम कारबेट को बुलाने दौड पड़े थे। बाद में वह युवती होश में आ गई और अपने आप गांव लौट आई।

जिम ने गरम पानी से उसके घाव धो डाले। दाहिनी आंख के पास से गर्दन तक की लटकती हुई चमडी तथा बायीं कनपटी के गहरे घाव की लटकती चमडी को सिर के साथ चिपका कर पट्टी बांध दी। जिम को पट्टी बांधने के लिए अपनी कमीज फाड़नी पड़ी। उनके पास लाल दवा की एक शीशी थी, जिसे उन्होंने लडकी के शरीर पर लगे तमाम घावों पर उडेल दिया। उस युवती की हालत ठीक होने में दस दिन लगे। जिम ने दो दिन तक एक बकरी नरभक्षी के अधूरे शिकार के स्थान पर बांध कर उसका बलूत के पेड़ पर बैठकर इंतजार किया। नरभक्षी तो नहीं आया लेकिन उसके द्वारा किए गए शिकार की खबर जरूर मिली कि 4 मील दूर लोहाली ग्राम मे नरभक्षी ने एक व्यक्ति को खा लिया है। जिम नरभक्षी की तलाश में 2 मील की कठिन चढ़ाई चढ़ने के बाद पहाड़ी की चोटी पर पहुंचे। वहां एक टूटी-फूटी झोपडी थी, जहां चार साल पहले भोटिया सौदागर रहता था, जो पूरे जिले में गुड़, नमक व मिट्टी का तेल इत्यादि बेचता था और कुछ बकरियां पालता था। एक दिन लोगों ने देखा कि बकरियां इधर-उधर भाग रही हैं और झोपडी खाली है। उसमें भोटिया की खोपड़ी और कुछ हड्डियां पड़ी मिलीं।

पहाड़ी की चोटी से जिम कारबेट दुर्घटना वाले गाव पहुंचे। वहां उन्होंने एक नयी कहानी सुनी। सूखी लकड़ियां जुटाने जंगल की ओर गई एक लडकी ने जब देखा कि नरभक्षी उस पर झपटने ही वाला है तो उसने एक खाई में छलांग लगा दी। नरभक्षी ने उसे हवा में ही छलांग लगाकर पकड़ लिया और दोनों धम्म से खाई में जा गिरे। पास के झरने मे कुछ औरतें कपडे धो रही थीं। नरभक्षी की पकड़ मे आते ही वह युवती बेहोश हो गई। जब वह होश मे आई, तो उसमे चिल्लाने की ताकत भी न थी। वह रेंगते हुए गांव पहुची। दांतो और पजों के घाव उसके शरीर पर बने हुए थे। जिम के पास केवल थोड़ी सी पोटाश बची थी, जिससे लडकी के घाव धोकर जिम ने उन पर पट्टी बाध दी। उनकी यह प्राथमिक चिकित्सा भी लडकी को नही बचा सकी और सुबह होते ही उसके प्राण-पखेरू उड गए।

दो युवतियों पर नरभक्षी द्वारा किए गए हमलों के नमूनो से जाहिर था कि नरभक्षी शेरनी ज्यादातर शिकार के लिए अपने बच्चे पर ही निर्भर करती थी। उसमें इतनी ताकत शेष नहीं थी कि एक ही झपट्टे में शिकार का काम तमाम कर सके। गांव वालों के इशारों के अनुसार कारबेट चारों ओर देखते हुए जंगल के बीच मे एक छोटे-से मैदान मे पहुचे जहां बरसाती पानी का एक पोखर भी था। तालाब के पास उन्हें बाघ के पैरों के निशान दिखाई दिए। निशान ताजे थे। जाहिर था कि जिम के आने की आहट से नरभक्षी निकल भागा है। जिम ने यह दिखाया कि मानों उसे नरभक्षी की आस-पास उपस्थिति की कोई जानकारी ही न हो। वह अपनी बंदूक के

घोड़े पर उंगली रखकर एक चट्टान पर लेट गए लेकिन नरभक्षी नहीं आया। शिकार और शिकारी का यह खेल अब शिकारी को निराश करने लगा था।

इस असफलता के बाद जिम ने 20 मील दूर हैराखान के रेस्ट हाउस में ठहरने का निश्चय किया। रास्ते में मिले एक चरवाहे को जिम ने चेतावनी दी कि बाघ यहीं-कहीं आस-पास घूम रहा है। कारबेट ने इस चरवाहे को एक सिगरेट भी पीने को दी। दूसरे दिन सुबह रेस्ट हाउस पहुंचने पर जिम को दुखपूर्ण खबर मिली कि जब वह चरवाहा सिगरेट सुलगा रहा था, तभी नरभक्षी ने उसे दायां कंधा पकड़ कर गिरा दिया। नरभक्षी के वार से उसका दायां कंधा और बांह टूट गए। तभी उसकी भैंसो ने नरभक्षी पर हमला करके उसे डरा दिया। नरभक्षी भी भाग गया लेकिन वहां से 30 मील दूर हलद्वानी अस्पताल में भर्ती होते ही चरवाहे ने प्राण त्याग दिए।

☐ ☐ ☐

जिम कारबेट ने नरभक्षी के विरुद्ध अगला अभियान जाड़ों में प्रारम्भ किया। पिछली गर्मियो से अब तक दलकनिया ग्राम में अनेक लोगों की जान नरभक्षी ने ले ली थी। चूंकि दलकनिया मे नरभक्षी का सुराग मिलने की उम्मीद न थी, इसलिए जिम ने वहीं पडाव डाला, जहां वह पिछले साल ठहरे थे। गांव में पहुंचते ही जिम को नरभक्षी का सुराग लग गया। वहां चीलें व गिद्ध मंडरा रहे थे। नरभक्षी ने एक गाय मार डाली थी, जो वहीं कहीं आस-पास ही पड़ी थी। जिम गाय के शरीर के पास एक पेड पर बैठक कर नरभक्षी का इतजार करने लगे। थोड़ी देर में आहट हुई लेकिन झाडियो से नरभक्षी नहीं बरन् एक तेंदुआ निकला, जिसे उन्होने फौरन गोली से उडा दिया।

इसके बाद पुनः प्रतीक्षा और निराशा का क्रम प्रारम्भ हुआ। एक दिन शाम को पास के गाव से नरभक्षी द्वारा एक बैल का शिकार कर लिए जाने की खबर आई। दुर्घटना स्थल पर जिम को बैल का केवल अस्थिपंजर मिला। जिम ने उस जगह पेड़ से एक भैस बांध दी और लगभग 20 फुट ऊंची चट्टान पर बैठकर इंतजार करने लगे। थोडी ही देर मे भैंस चौकन्नी होकर एक ओर देखने लगी। जिम ने भी उसी ओर देखा। नीचे खड्ढ में धीरे-धीरे एक सिर उभर रहा था। कुछ पल वह सिर स्थिर रहा, फिर अचानक अपनी पूरी छलांग के साथ नरभक्षी का शरीर प्रकट हुआ। उसने भैंस पर हमला कर दिया था।

इस कहानी के प्रारभ में ही इसके बाद की घटना जिम कारबेट के शब्दो में हम पढ़ चुके है। अपना पहला निशाना चूकने के बाद रायफल दोबारा भर कर नरभक्षी के दोबारा आने की प्रतीक्षा करने लगे। 10-15 मिनट बाद दूसरी बार बाघ का सिर दिखाई पड़ा। बाघ आगे बढ़ा और भैंस के मृत शरीर का निरीक्षण करने लगा। अब उसका समूचा पिछला हिस्सा कारबेट के सामने था। कारबेट ने बहुत सभाल कर निशाना लगाया, लेकिन यह क्या? आश्चर्यजनक रूप से निशाना फिर चूक

गया। बाघ फिर छलांग लगाकर आंखों से ओझल हो गया। जिम के पास इस चूक के लिए भी कोई तर्क नहीं था।

जिम कारबेट ने नरभक्षी की तलाश जारी रखी। एक दिन जंगल में वह ऐसी जगह पहुंचे, जहां रेत का मैदान था। उन्होंने दूरबीन निकाली और पूरे क्षेत्र का निरीक्षण करना प्रारम्भ किया। उन्होंने देखा कि नरभक्षी दूर रेत में लेटा हुआ है। उसके दोनों पंजे आगे निकले हुए हैं तथा पिछली टांगें अंदर दुबकी हुई हैं। उसके तीन ओर उभरी हुई चट्टानी दीवारें थीं।

जिम ने स्वयं पहल करने का निश्चय किया। उन्होंने धड़कते दिल से निशाना लगाया। इस बार उनका निशाना सच्चा था। गोली उसकी रीढ़ को छेदकर हृदय के ऊपरी हिस्से से निकल गई। उसका सिर उसके अगले पंजों पर झुक गया।

गांव वालों ने नरभक्षी के पंजे तोड़े और दांत निकाले। उन्होंने देखा कि उसके अगले दांत घिसकर जड़ तक पहुंच गए थे। पंजों की धार कुंद हो चुकी थी। इस तरह से वह नरभक्षी शिकार के लिए विकलांग हो चुका था। वास्तव में जिस दिन से उसका बच्चा जिम की गलती से गोलियों का शिकार बना था, तभी से वह बाघिन ज्यादा भीषण नरभक्षी बन गई थी क्योंकि फुर्तीले जानवरों का शिकार करना उसकी क्षमता से बाहर हो गया था।

●●

कनैडी मौत के मुंह में

दूसरे विश्व युद्ध के दौरान अमेरिका के भावी राष्ट्रपति जॉन एफ. कनैडी को प्रशांत महासागर में जिंदगी और मौत का संघर्ष करना पड़ा था।

उनका संकट इतना गंभीर था कि किसी को उनके बचने की उम्मीद नहीं थी। इसलिए जब उनकी मृत्यु की खबर पहुंची तो किसी ने उसके प्रमाण की आवश्यकता भी नहीं समझी। यहां तक कि उनकी स्मृति में शोक समारोह हो गया।

......लेकिन कनैडी जीवित थे। वह अपने साथियों सहित किसी न किसी तरह जीवित रहने की कोशिश कर रहे थे। प्रशांत महासागर की गोद में उनकी तारपीडो बोट जापानी विध्वंसक की टक्कर से टूट गई थी। कनैडी ने ऐसी विकट परिस्थितियों में भी अपने साथियों का उदाहरणयोग्य नेतृत्व किया। वह उन्हें बार-बार निराशा के गर्त से बाहर खींच लाए। निरंतर कोशिश करते रहने का उनका स्वभाव और निर्भयता ने ही संभवतः उन्हें आगे चल कर अमेरिका के राष्ट्रपति के रूप में विश्व का सबसे शक्तिशाली व्यक्ति बनाया।

12

अगस्त 1943 की रात। सोलोमन खाड़ी में ब्लैकेट जलडमरुमध्य। पी टी 109 तारपीडो बोट के कप्तान जान एफ. कनैडी ने पहरा देते समय दूर समुद्र में उभरती हुई आकृति की ओर देखा। कनैडी के साथ तारपीडो बोट में जार्ज वार्नी रॉस नामक अफसर भी था। इत्तफाक से बोट के ड्राइविंग व्हील पर तैनात चालक का नाम भी ए. एम. कनैडी था। ए. एम. कनैडी ने उस आकृति पर हमले के लिए व्हील घुमाया। बोट में तीन इंजन थे लेकिन उसे हवाई हमले के डर से केवल एक ही इंजन पर चलाया जा रहा था, ताकि बोट ज्यादा शोर न करे। अचानक बोट पर मौजूद सैनिकों ने देखा कि वह आकृति एक जापानी विध्वंसक की है। जापानी विध्वंसक 40 नाट की गति से बढ़ा चला आ रहा था। सभी स्तब्ध रह गए। देखते-देखते विध्वंसक ने तारपीडो बोट में भयानक टक्कर दे मारी और बोट के दो टुकड़े हो गए।

एक दिन बाद पी टी स्क्वाड्रन के एक अधिकारी ने सोलोमन द्वीप से स्क्वाड्रन मुख्यालय को एक पत्र लिखा,जिसमें दुख और निराशा से भरे हुए ये शब्द लिखे हुए थे "विगत रात जार्ज रॉस ने उस आदर्श के लिए अपनी जान दे दी, जिसमें वह हम सबसे ज्यादा मजबूती से विश्वास करता था क्योंकि वह कट्टर आदर्शवादी था। पूर्व राजदूत के पुत्र जॉन कनैडी भी उसी बोट पर मौजूद थे। उन्होंने भी अपना जीवन खो दिया।"

दो दिन पश्चात् कनैडी, रॉस व पी टी 109 के 11 अन्य सैनिकों की आत्मा को शांति देने के लिए शोक समारोह सम्पन्न हुआ। क्या वास्तव में कनैडी और रॉस की प्रशांत महासागर के भीषण युद्ध ने बलि ले ली थी? सारा विश्व जानता है कि यही जॉन एफ. कनैडी आगे चलकर अमेरिका के अत्यंत लोकप्रिय राष्ट्रपति बने। बोट के जापानी विध्वंसक से टकराने के पश्चात् उस पर सवार लोगों पर जो बीती, वह वास्तव में दिल हिला देने वाली कहानी है।

□ □ □

विध्वंसक की टक्कर से कनैडी उछलकर बोट के डैक की छत पर पीठ के बल गिर गए। उन्हें लगा कि मृत्यु के समय ऐसा ही अहसास होता होगा। टक्कर मारकर विध्वंसक उनकी बगल से गुजर गया। बोट के दोनों इंजीनियर इस टक्कर से बुरी तरह प्रभावित हुए थे। एक इंजीनियर को, जो डैक के नीचे था, जलते हुए पैट्रोल का सामना करना पड़ा। दूसरा इंजीनियर डैक पर सो रहा था। टक्कर के धक्के से

उसका शरीर डैक के नीचे गिरा और उसने इधर-उधर इतनी पलटनियां खाईं कि उसका शरीर चोटों से जगह-जगह काला और नीला पड गया। बोट के जलरोधी कम्पार्टमेण्ट को क्षति न पहुंचने से पी टी बोट का कनैडी वाला हिस्सा समुद्र में बहता रहा। 6 लोग पानी में गिर पड़े थे, जिनमें दोनों इंजीनियर मैकमोहन व जोहस्टन शामिल थे। थर्ड अफसर रॉस के अलावा, हैरिस, जिंसेर व स्टार्के भी पानी में हाथ-पैर मार रहे थे। कनैडी के साथ बोट के टूटे हुए हिस्से पर मैकगुइरे, माउर, अल्बर्ट तथा अफसर थॉम मौजूद थे। केवल दो लोगों का पता नहीं चला– किर्क्से तथा मारने।

पानी के अंदर से हैरिस ने चिल्लाकर बताया कि मैकमोहन बुरी तरह घायल है। 5 वर्ष पहले हार्वर्ड विश्वविद्यालय की तैराकी टीम में रह चुके कनैडी ने फौरन पानी में छलांग लगा दी और सौ गज तक तैरकर मैकमोहन को जा पकड़ा। कनैडी मैकमोहन को पानी में खींचते हुए टूटी हुई बोट की ओर बढ़े। हवा बोट को उनसे दूर किए दे रही थी। इस संघर्ष में उन्हें ४५ मिनट लग गए। तब कहीं जाकर वह हैरिस व मैकमोहन के साथ बोट पर पहुंच पाए। हैरिस की टांग बुरी तरह घायल थी। कनैडी को उसे भी जोश दिलाना पड़ा, वरना वह पीड़ा की वजह से निराश हुआ जा रहा था। इसके बाद कनैडी ने पानी में गिर चुके अपने हर साथी की बोट पर आने मे मदद की। इस प्रक्रिया मे उन्हें पूरे तीन घण्टे लगे। बोट पर पहुंचते ही कुछ तो थकान के कारण फौरन सो गए और कुछ इस बात पर आश्चर्य करने में व्यस्त हो गए कि वे अभी भी जीवित हैं।

□ □ □

सुबह होते ही बोट के दुर्भाग्यशाली सैनिको ने इधर-उधर नजर दौडाई। तीन मील उत्तर पूर्व कोलोम्ब वेगारा द्वीप पर 10,000 जापानी जमा थे। पांच मील पश्चिम मे बेला-लावेला द्वीप पर इससे भी ज्यादा जापानी सैनिक मौजूद थे। एक मील दक्षिण पर जापानी शिविर साफ दीख रहा था। कनैडी ने सभी को झुक जाने का आदेश दिया ताकि जापानी आकाश की पृष्ठभूमि पर उनकी छायाकृतियां न देख सकें। दो घायलो को नाव मे लिटा दिया गया और बाकी नाव के सहारे पानी में लटक गए। पूरी सुबह यूं ही लटके-लटके बीत गई। जब कनैडी को लगा कि दक्षिण-पूर्व तीन मील दूर पर स्थित छोटे से द्वीप पर जापानियों की मौजूदगी का खतरा कम हो गया है तो वे लोग उस तरफ तैरने लगे। वैसे भी नाव का बचा हुआ हिस्सा डूबने ही वाला था। तैरना न जानने वाले लोग नाव की टूटी लकड़ी के टुकडों के सहारे बढ़ने लगे। कनैडी घायल इंजीनियर की पेटी अपने दांतों में दबाकर तैर रहे थे। उनके मुंह के रास्ते पेट मे समुद्री खारा पानी जा रहा था। 5-6 घण्टे की तैराकी के फलस्वरूप वे लोग उस 100 गज लम्बे-चौडे द्वीप पर पहुचे। कनैडी का पेट समुद्र के पानी की वजह से भारी हो गया था लेकिन उनका दिमाग अब भी लगातार सोच रहा था।

अचानक उन्होंने अपने साथियों से कहा कि वे समुद्र में कोई नाव तलाश करने जा रहे हैं। अगर उन्हें नाव मिली तो वे अपनी जहाजी लालटेन को दो बार चमकाएंगे। उनका कोड वर्ड होगा 'रोजर' तथा उनके साथी उन्हें जवाब देंगे—'विल्को'।

रबर की लाइफ बेल्ट कमर में बांधकर तथा बगल में 38 बोर की रिवाल्वर डालकर कनैडी अगले छोटे से द्वीप के बाद फर्ग्युसन पैसेज की तलाश मे निकल पड़े। उन्हें कोई न कोई घूमती हुई नाव दिखाई दे जाने की पूरी उम्मीद थी।

आधे घण्टे मे कनैडी अगले द्वीप के उस छोर पर जा पहुंचे, जहां से आने वाली नावो का उन्हें पता चल सकता था। वे एक घंटा इधर-उधर तैरते रहे। उनकी कोशिश थी कि शायद कोई मोटरबोट उन्हें दिखाई दे जाए या उसके इंजन की आवाज ही वे सुन लें। अंधेरे में आशा की कोई किरण न दीखने पर वे अपने साथियों के पास जाने के लिए मुड़े।

कनैडी की वापसी बहुत मुश्किल साबित हुई। वे बहुत थक चुके थे। उन्हें उल्टी धारा में तैरना पड़ रहा था। उन्होंने लालटेन चमकाई और 'रोजर-रोजर' की आवाजें लगाईं। उनके साथियों ने सोचा कि कनैडी को नाव मिल गई है इसलिए वे 'विल्को-विल्को' कहकर तट पर उनकी प्रतीक्षा करने लगे। उन्हे क्या पता था कि कनैडी में उन तक पहुंचने की शक्ति ही शेष नहीं है। जब देर तक कनैडी उन तक

साथ उनके सम्पर्क का एकमात्र सूत्र थी। थकान, ठण्ड तथा बेहोशी के आलम में कनैडी का शरीर समुद्र की लहरों के सहारे समुद्री द्वीपों की गोलाइयों मे बहता रहा। उन्होंने कई द्वीपों की परिक्रमा कर डाली। 6 बजे जब कुछ प्रकाश हुआ तो उन्होंने देखा कि वे उसी जगह हैं, जहां एक रात पहले थे। उन्होने पुनः अपने साथियों वाले द्वीप पर पहुंचने की चेष्टा प्रारम्भ की। एक क्षण के लिए उन्हे लगा कि वे वास्तव मे लौटने के लिए प्रयास ही नहीं कर रहे है, वरन् वापसी की केवल कल्पना भर कर रहे हैं। पानी बहुत ठण्डा था। वह उन्हे असलियत का अहसास दिलाता रहा। शनैः-शनैः कनैडी अपने साथियों वाले द्वीप पर पहुंचे। उन्हें उल्टियां हो रही थी। उनके मुंह से केवल इतना निकला "रॉस, आज की रात तुम प्रयास करना" और बेहोश हो गए।

रॉस ने अगली रात फर्ग्युसन पैसेज वाले द्वीप पर किसी बोट की तलाश में व्यतीत की और असफल होकर वापस आ गया। रॉस की असफलता ने पूरे दल को आशंकाओं और निराशा से ग्रस्त कर दिया। उन्हे लगा कि अब उनके सामनें प्रार्थना करने के अलावा कोई चारा नहीं है।

☐ ☐ ☐

परंतु कनैडी के दिमाग में एक नई योजना जन्म ले चुकी थी। इसी के अनुसार पूरा

दल तीन घण्टे की तैराकी करके पास के एक बडे द्वीप पर पहुंचा, जहां नारियल के ऊचे-ऊंचे वृक्ष थे और जहां से फर्ग्युसन की खाड़ी नजदीक ही थी। एक बार फिर कनैडी को मैकमोहन की पेटी को दांतो में दबाकर तैरना पड़ा। तथा दल के कई सदस्यो ने लकड़ी के टुकड़ों का सहारा लिया। प्यास के मारे उन सभी के कण्ठ सूख चुके थे। उन्होंने कुछ नारियल तोडे और उनका पानी पिया। रात में बारिश हुई। किसी ने सुझाव दिया कि किसी झाडी के नीचे चलकर उसकी पत्तियों पर ठहरा पानी चटकर प्यास बुझाई जाए। सुबह होते ही उन्होंने निराश आंखों से देखा कि पत्तिया चिड़ियो की बीट से भरी हुई हैं। उन सभी के मुंह का स्वाद कसैला हो आया और बदकिस्मत सैनिकों ने द्वीप का नाम पक्षी द्वीप रखकर संतोष कर लिया।

कनैडी ने एक बार पुन: प्रयास करने की ठानी। रॉस के साथ वे दक्षिण पूर्व की ओर स्थित नौरू द्वीप की ओर तैरकर रवाना हुए। दोनों के शरीर दुर्बल हो चुके थे फिर भी एक घण्टे की तैराकी के बाद वे उस द्वीप पर पहुंच ही गए। इस द्वीप से उन्हें फर्ग्युसन मार्ग भी दिखाई पड़ा और वही उन्हे जापानियों द्वारा छोड़ी गई एक व्यक्ति द्वारा चलाई जाने वाली डोंगी व खाने का कुछ सामान तथा पानी का एक थैला प्राप्त हुआ। पानी का थैला लेकर डोंगी में सवार कनैडी पुन: फर्ग्युसन की खाडी मे किसी पैट्रोल तारपीडो बोट की तलाश मे निकले लेकिन उन्हें इस बार भी असफलता के अलावा कुछ न मिला। उसी डोंगी से कनैडी पक्षी द्वीप लौटे और अपने भूखे-प्यासे साथियों को उन्होने जापानियो द्वारा छोड़ा गया राशन-पानी दिया। पक्षी द्वीप से कनैडी और रॉस डोंगी मे फिर निकल पड़े। रास्ते में बहने वाली ृेज हवा ने उनकी डोगी पलट दी। कनैडी को एकबारगी लगा कि उनके प्रयासों का ..त हो गया है लेकिन तभी न जाने कहा से नौरू द्वीप के कुछ आदिवासियों की डोंगी ने आकर उन्हे बचा लिया।

कनैडी ने नारियल पर कलम बनाने वाले चाकू से संदेश लिखा "ग्यारह जीवित। आदिवासियों को स्थिति ज्ञात। नौरू द्वीप। कनैडी।" आदिवासियों को समझा बुझा कर संदेश वाला नारियल देकर कनैडी ने 'रेण्डोवा द्वीप' की ओर रवाना कर दिया, जहां पैट्रोल तारपीडो बोटो का अड्डा था।

पर अभी भी उनकी मुसीबतो का अंत नहीं हुआ था। आदिवासियों के चले जाने के बाद रॉस और कनैडी सारे दिन हताश और बीमारी की हालत मे पडे रहे। अंधेरा होते ही कनैडी को कुछ चेतना आई और उन्होंने रॉस से फर्ग्युसन मार्ग चलने का आग्रह किया। रॉस ने उनके प्रस्ताव का विरोध किया लेकिन कनैडी के आग्रह पर उसे झुकना पड़ा। अंतत. वे दोनो एक छोटी नाव में बैठकर फर्ग्युसन मार्ग की ओर चल पड़े। देखते-देखते लहरे 5–6 फुट ऊंची हो गईं। लहरो ने उनकी डोगी को उलट दिया। दोनो नाव से ही लटके हुए थे। ज्वार ने उन्हें घसीट कर खुले सागर पर पहुंचा दिया। वर्षा होने लगी। उस भयानक स्थिति में कनैडी ने रॉस से कहा—"सॉरी, मैंने तुम्हें इस संकट मे फंसाया।" लेकिन जिंदादिल रॉस का जवाब

था, "इस समय यह कहने का उपयुक्त मौका है कि मैंने तुमसे पहले ही कहा था, लेकिन मैं ऐसा कहूंगा नहीं।"

सागर उनके चारों ओर डरावने तरीके से दहाड रहा था। उनके सामने नाव से लटके रहने के अलावा कोई चारा न था। अचानक एक शक्तिशाली थपेड़ा आया और कनैडी की पकड़ छूट गई। अब उनका सिर नीचे और पैर ऊपर थे। वे जोर से चिल्लाए, 'बार्नी, बार्नी।" कोई जवाब नहीं आया। कनैडी पुनः चिल्लाए "बार्नी।" दूसरी बार रॉस की आवाज उन्हें सुनाई पड़ी। वह भी जीवित था तथा सागर की एक लहर ने उसका कधा, बांह तथा पहले से पीडित टांग को लगभग बेकार कर दिया था। लहरें उन्हें किनारे पर घसीट लाई थी। वे थककर वहीं गिर पड़े और सो गए।

सुबह आंख खुलने पर उन दोनो ने स्वयं को चार मोटे-तगड़े आदिवासियों के बीच पाया। उनमें एक अंग्रेज़ी बोलने वाला आदिवासी था। उसने कनैडी को एक संदेश दिया। यह संदेश न्यू जार्जिया पर गश्त कर रही न्यूज़ीलैण्ड की सैनिक टुकड़ी के अफसर का था, जिसमें कनैडी से अनुरोध किया गया था कि वे उक्त आदिवासियों के साथ जल्दी से जल्दी उस अफसर के पास पहुंचें।

आदिवासियों ने कनैडी और रॉस को न्यूजार्जिया पहुंचाया। तब तक उनके अपने पैट्रोल तारपीडो बोट अड्डे को भी खबर मिल चुकी थी। वहां से बचाव दल आ पहुंचा और उन्होंने कनैडी के अन्य साथियों की खोज खबर ली।

थके हुए अमेरिकन सैनिकों को ब्राण्डी पिलाकर ताजा दम किया गया। वे जानते थे कि संकट और दुर्भाग्य से संघर्ष में उनकी जीत हो चुकी है। कनैडी और रॉस ने इस लड़ाई मे जान का जोखिम उठाकर उनका नेतृत्व किया था।

● ●

प्रेमी के शव के साथ पलायन

यह उन दो प्रेमियों की दास्तान है, जो अपने हाथ-पैरों के बलबूते पर तीन मील का समुद्र पार करके चीन से हांगकांग पहुंचना चाहते थे। उनका प्रयास सफल अवश्य हुआ, लेकिन उसमें न सफलता का उत्साह था और न ही कोई खुशी की हिलोर। इसके विपरीत मृत्यु और निराशा उस युगल की किस्मत में थी।

प्रेमी ने बीच समुद्र में ही अपने प्राण त्याग दिए। प्रेमिका चाहती तो उसे छोड़कर ज्यादा आसानी से तैर कर अपनी मंजिल पर पहुंच सकती थी लेकिन वह अपने प्रेमी के शव को अपने साथ लेकर तैरती रही व तमाम कठिनाइयों को झेलती हुई मंजिल पर पहुंची। इस कहानी का यही पहलू इसे महागाथा बना देता है।

13

डीप बे के खामोश जल में पीठ पर ब्लैडर बांधे हुए एक चीनी युवक-युवती तेजी से हांगकांग के लाऊफाऊशान कस्बे की ओर तैर रहे थे। लक्ष्य और उनके बीच केवल 3 मील का फासला था, जिसे वे मात्र 6 घण्टे में पूरा कर लेना चाहते थे। अचानक युवक ने चिल्ला कर अपनी प्रेमिका से कहा, "चलो, वापस लौटं जाएं। मैं अब नहीं तैर सकता।" युवती ने देखा कि उसका साथी हांफ रहा है। वह जानती थी कि उसके प्रेमी को गठिया की बीमारी है। इसलिए उसने समझ लिया कि अब उसे तैरने में मुख्य भूमिका निभानी पड़ेगी। इतने में युवक निराश होकर अपनी प्रेमिका के गले में एक बांह फंसा चुका था। इससे उसकी प्रेमिका भी डूबते-डूबते बची। लेकिन उससे छूटने की प्रक्रिया में युवती समझ गई कि एक नौसीखिया तैराक होने के बावजूद भी वह अपने प्रेमी को लादकर तैर सकती है। कुछ ही क्षण बाद वह युवक की पीठ से बंधे ब्लैडर की डोरी के सहारे उसे खींचते हुए तैरने लगी। यह एक कठिन परिस्थिति थी लेकिन वे दोनों वापस भी तो नहीं लौट सकते थे। यदि तैरने में असफल रहने पर उनके सामने पानी में डूबने से होने वाली मौत थी, तो पीछे लौटने पर उन्हें गोलियों की बौछारों का सामना करना पड़ता। तैरने में फिर भी सफलता की थोड़ी गुंजाइश तो थी लेकिन लौटने पर बचने की कोई सम्भावना ही न थी।

युवक का नाम लाउ पिंग-सांग था, तथा युवती का नाम पान वान-चुआग। दोनों का इरादा था कि साम्यवादी चीन छोड़कर वे किसी भी तरह हांगकांग पहुंच कर शादी कर सकें। पान को हांगकांग के निवासियों की जीवन शैली पसंद थी, जो ब्रिटिश व अमेरिकन संस्कृति के मानदण्डों पर चलती थी। चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के सर्वहारा शासन में उसे अपना दम घुटता महसूस होता था क्योंकि उसे कम्युनिस्टों द्वारा कैण्टन में अपने पिता के फलते-फूलते व्यापार को जब्त कर लेना सख्त नापसंद आया था। उसे कम्यून के सामूहिक श्रम से घबराहट होती थी। एक दिन पान की मुलाकात पिंग नामक एक तरुण से हुई। वह मिडिल स्कूल से निकल कर आ रहा था। खेत में काम करते समय हुई पहली मुलाकात ने धीरे-धीरे प्रेम का रूप ले लिया। वे साथ-साथ घर बसाने का सपना देखने लगे। वैसे दोनों की प्रवृत्तियां एक दूसरे से अलग-अलग थी। पिंग एक अनुशासित और शांत स्वभाव का युवक था लेकिन पान आसानी से जोश में आ जाने वाली लड़की थी। पिंग की सोहबत में पान ने भी धैर्य और आत्मानुशासन के कुछ सबक सीखे। उसे क्या पता था कि ये सबक कभी उसके लिए जीवनदायी बन जाएंगे।

सन् 1920 के बसंत में जब पान और पिंग छुट्टियों में अपने परिवारों से मिलने कैण्टन गए तो उनके दिमाग में पहली बार भाग निकलने की बात आयी। उन्होंने अपने घर वालों से सहमति ली और योजना तैयार करनी प्रारम्भ कर दी।

सितम्बर में पान ने बीमारी का बहाना बनाकर कम्यून से 20 दिन की छुट्टी ले ली। पिंग वास्तव में गठिया से पीड़ित था, इसलिए 20 दिन की छुट्टी मिल गई। कैण्टन में मित्रों की मदद से उन्होंने कुतुबनुमा तथा बास्केटबाल के ब्लैडर हासिल किए। कई दिनों के लायक भोजन एक मित्र के घर में छिपा दिया गया। इस बीच में पिंग ने, जो एक कुशल तैराक था और कई प्रतियोगिताएं भी जीत चुका था, पान को तैराकी सिखा दी।

इन दोनों ने संदेह से बचने के लिए अलग-अलग चांगमुटाऊ पहुंचने का निर्णय लिया। जब पान चांगमुटाऊ स्टेशन पहुंची तो पिंग सांग वहा मौजूद था। शीघ्र ही दोनों पहाड़ियों के रास्ते शेह हाऊ की ओर बढ़ने लगे, जहां से हांगकांग केवल 3 समुद्री मील दूर था। वे दिन मे छिपे रहते, रातों को टेढ़े-मेढ़े चक्करदार रास्तों से फासला तय करते। वैसे समुद्र तट का रास्ता केवल 25 मील लम्बा था लेकिन पकडे जाने के डर से सीधा रास्ता न अख्तियार करने के कारण तथा रास्ते के गांवों से कतराने के कारण उनकी भोजन सामग्री समाप्त हो गई तथा उन्हें पूरे 8 दिन लग गए। समुद्र तट के रास्ते पर सख्त पहरा था। इसलिए वे 6 मील और पैदल चले और चक्कर काटकर 9 नवम्बर, सन् 1970 को डीप बे के जल में उतर गए।

□ □ □

पैदल चलने के परिश्रम व समुद्र के ठण्डे पानी के कारण उखड़ आए गठिया के दर्द के कारण निराश हो चुके पान को दो घण्टे तक पिंग पानी मे खींचती रही। शुरू में उसने भी थोडे पैर चलाए जिससे पान को आसानी हुई लेकिन बाद मे वह बार-बार बेहोश होने लगा। अंत मे उसने हारकर पान से कहा कि वह उसे छोडकर चली जाए, वरना उन दोनों का ही जीवन संकट में पड़ जाएगा। पान ने अपने प्रेमी में उत्साह भरने और आशा जगाने की बहुत चेष्टा की लेकिन पिंग लगातार गोते खा रहा था। जिससे उसके पेट में समुद्र का पानी भरता जा रहा था। पान ने उसे झिंझोड़ा, पानी में खींचा, उसे आगे धकेला लेकिन सारे प्रयास व्यर्थ गए। फिर उसने समुद्र में दूर-दूर तक किसी नाव की तलाश में आंखें घुमानी शुरू की। वह पिंग की जान बचाने के लिए कम्युनिस्टों की नाव पर जाने के लिए भी तैयार 'ी लेकिन समुद्र मे दूर-दूर तक किसी भी नाव की रोशनी नही दिखाई दी।

थोडी देर बाद पिंग साग का शरीर अधिक समुद्री पानी पी जाने तथा सांस में अवरोध आने से एकदम निश्चल हो गया। वह अपनी मंजिल पर पहुंचने से पहले ही प्राणों से हाथ धो चुका था लेकिन पान ने उसका शव समुद्र मे नहीं छोडा। वह उसे साथ लेकर तैरती रही। अब तैरना कुछ सरल था क्योंकि उसे पिंग का सिर पानी के ऊपर नही रखना था।

जैसे-जैसे मंजिल करीब आती जा रही थी, पान की शारीरिक क्षमता चुकती जा रही थी लेकिन पिंग द्वारा सिखाए गए आत्मनियंत्रण ने उसे बार-बार शक्ति प्रदान की। जैसे-जैसे वह तट के करीब पहुंचती जाती, वैसे-वैसे उसे कम्युनिस्ट नावों की दृष्टि से बचने के लिए अपना सिर और नीचे रखना पड़ता। लाऊफाऊशान का कस्बा दिखाई देने लगा लेकिन जब तट केवल 100 गज दूर रह गया तो पान की टांगों में भयानक ऐंठन होने लगी। पान की विवशता यह थी कि वह कम्युनिस्टों द्वारा पकड़े जाने के डर से मदद के लिए चिल्ला भी नहीं सकती थी। तभी उसने देखा कि हांगकांग मेरिन पुलिस की एक नौका उसकी ओर बढ़ रही है।

□ □ □

उस नौका पर मौजूद पुलिस वालों ने पान को पानी के बाहर खींच लिया। जब पान ने उन्हें बताया कि उसके साथ पानी मे कोई और भी है तो वे एक युवक की लाश को उसके साथ देखकर आश्चर्यचकित रह गए। पान ने उन्हें पूरी कहानी बताई तो उन्होंने पूछा कि उसने अपने

अकेले तैरने में उसे बेहद ३

जीवित हांगकांग पहुंचने की थी लेकिन यदि वह जीवित नहीं पहुंच सका। अब कम से कम उसका हांगकांग में अंतिम संस्कार तो हो जाएगा।"

पिंग को हांगकांग मे दफनाया गया। वह पान का दुर्भाग्य ही था कि जिसकी प्रेरणा में उसने असम्भव को सम्भव कर दिखाया, उसी की सफलता और असफलता में जिंदगी नहीं वरन् मौत का ऐसा फासला था, जिसे आज तक कोई कभी पार नही कर सका।

○ ○

धूमकेतु—एक जीवन रेखा

दूसरे महायुद्ध के दौरान नाजियों के जाल में फंसे मित्र राष्ट्रों के सैनिकों को बचाने के लिए कई योजनाएं बनाई गईं। इनमें से अधिकांश योजनाओं के पीछे धाकड़ जासूसों का दिमाग लगा हुआ था। मात्र 'धूमकेतु' ही एक ऐसी योजना थी, जिसके पीछे न तो कोई पेशेवर दिमाग था और न ही कोई पेशेवर हाथ।

'धूमकेतु' के पीछे दुनिया की आजादी के पक्ष में खड़े हुए युवकों व युवतियों की टोली थी, जो निःस्वार्थ भाव से अपनी जान हथेली पर लेकर हजारों बेल्जियम और ब्रिटिश सैनिकों को बचाने के लिए जी-तोड़ कर लगी रही।

'धूमकेतु' के सदस्यों को नाजी यातना शिविर में बर्बर मृत्यु का शिकार बनाया गया लेकिन 'धूमकेतु' का काम नहीं रुका। एक के बाद एक नेता पैदा होता रहा और 'धूमकेतु' नाजियों की आंखों में धूल झोंक कर अपना काम करता रहा।

'धूमकेतु' के सदस्यों ने बंदूकें नहीं चलाई, बम नहीं फेंके लेकिन उन्होंने बिना मोर्चे पर लड़े हुए भी सर्वोच्च साहस और महान् वीरता का प्रदर्शन किया।

14

सन् 1941 के जून की शुरूआत। ब्रुसेल्स से 11 बेल्जियन सैनिक तथा एक प्रौढ़ महिला गुप्त रूप से नाजियों की क्रूर खुफिया पुलिस से बचते हुए रवाना हुए। इस दल.का नेतृत्व एक युवती तथा एक युवक कर रहा था। युवती का नाम था आंद्री तथा युवक का नाम था आर्नोल्ड। अरदसल ये बेल्जियन सैनिक नाजियों के डर से छुपे हुए थे तथा आंद्री व आर्नोल्ड 'धूमकेतु' नामक संस्था के कर्ताधर्ता थे, जो आदर्शवादी युवकों द्वारा स्थापित की गई थी। इस संस्था का एक ही उद्देश्य था—नाजियों के जाल से मित्र राष्ट्रों के सैनिकों को जैसे भी हो सुरक्षित बाहर निकालना।

सौम्मे नदी तक पहुंचने में इस दल को विशेष कठिनाई नही उठानी पड़ी। वहां [illegible]

का एक गुच्छा और रबड़ का ट्यूब प्राप्त किया। रात होते ही वह नदी में कूद गई और 40 गज तैरने के उपरांत उसने तार का एक सिरा नदी के दूसरे किनारे के पेड़ से बांध दिया। धीरे-धीरे पलायनकर्ता तार और ट्यूब के सहारे दूसरी ओर उतरने लगे। इस पूरे अभियान में 2 घण्टे लगे। इस दौरान आंद्री को 11 बार नदी पार करनी पड़ी। आंद्री के इस साहस से प्रभावित होकर उन सैनिकों मे से एक ने कहा—"उसने मुझे बहादुर बना दिया। इतना बहादुर कि जितना बहादुर होने की मैं कल्पना भी नहीं कर सकता था।"

□ □ □

आंद्री कौन थी? आर्नोल्ड कौन था? 'धूमकेतु' क्या था? क्या ऊपर दिया गया परिचय इन तीनों नामों के साथ अन्याय नहीं माना जाएगा? वास्तव में 'धूमकेतु' की कहानी विश्वयुद्ध की एक ऐसी कहानी है, जिसकी एक-एक पंक्ति जोखिम, साहस और बलिदान की मिली-जुली स्याही से लिखी गई है।

उत्तर-पश्चिम यूरोप में नाजी आक्रमणों से पराजित और त्रस्त मित्र राष्ट्रों के सैनिकों को बचाने के लिए अनुभवी और पेशेवर जासूसों की देख-रेख में अनेक बचाव सेवाओं का आयोजन किया गया था लेकिन 'धूमकेतु' नामक संस्था के नाम के पीछे कोई जासूस या प्रशिक्षित मस्तिष्क काम नहीं कर रहा था। एक साहसी बैल्जियन लड़की आंद्री डि जोंग ने इस संस्था को जन्म दिया। उसके पिता फ्रेड्रिक्स डि जोंग स्कूल टीचर थे और उन्हीं की प्रेरणा से आंद्री जिंदगी और मौत का यह खेल

खेलने के लिए तैयार हुई। आंद्री के पिता ने उसके सामने एडिथ पावेल नामक उस बहादुर अंग्रेज नर्स का आदर्श रखा, जो प्रथम विश्वयुद्ध में सिपाहियों की सेवा करते हुए जर्मनों की गोली से शहीद हुई थी।

मई, सन् 1940 मे जब नाजियों ने बेल्जियम पर हमला किया तो 24 वर्षीय आंद्री ने एडिथ पावेल के पद चिह्नो पर चलने का संकल्प लिया। लगभग 7 माह तक वह बर्गेस अस्पताल में बेल्जियम और ब्रिटिश सैनिकों की तीमारदारी करती रही। बेल्जियम और उसके आस-पास के तमाम छोटे-छोटे देश शत्रु के कब्जे में आ चुके थे। जर्मन पुलिस अपनी कार्रवाई प्रारम्भ कर चुकी थी। मित्र राष्ट्रों के छिपे हुए सैनिको को पकड़-पकड कर सजाएं दी जाने लगी थीं।

ऐसी विकट परिस्थिति मे आंद्री ने ब्रिटेन पहुंचने के लिए पलायन का रास्ता चुना, जो जिब्राल्टर से होकर जाता था अर्थात् नाजियों के कब्जे में आए 600 मील लम्बे फ्रांस और नाजी समर्थक 600 मील ही लम्बे स्पेन के रास्ते को पार करते हुए! इसके लिए तीन राष्ट्रों की सीमाएं और अनेक सैनिक क्षेत्र पार करने थे। इस काम के लिए सैकड़ों ऐसे कार्यकर्त्ताओं की आवश्यकता थी, जो अजनबियों के लिए अपनी जान जोखिम में डाल सके। यूरोप की सबसे चालाक, क्रूर व दमनकारी पुलिस की आंखो में धूल झोंकना भी कोई आसान काम न था।

आद्री ने युवक आर्नोल्ड तथा अपने पिता के सहयोग से काम शरू कर दिया। उसने तय किया कि वे पलायन करके बेल्जियम की सीमा तक पहुंचेंगे। वहां से वे जर्मन चौकियों से कतराते हुए फ्रांस जाएंगे। फ्रांस से स्पेन की सीमा पर पहुंचकर साइकिल से यात्रा प्रारंभ होगी। यह यात्रा एक ऐसे शरणस्थल पर समाप्त होगी, जो एक सुरक्षित घर में बनाया जाएगा। दिन भर आराम करने के बाद उत्तरी स्पेन पहुंचने के लिए पैदल यात्रा प्रारंभ की जाएगी। अंत में ब्रिटिश कौंसुलेट की मदद से मोटरकार द्वारा मैड्रिड होते हुए जिब्राल्टर पहुंचकर यात्रा समाप्त होगी।

पलायन के अंतिम भाग की व्यवस्था करने के लिए आर्नोल्ड स्पेन गया और ग्रीफ नामक 30 वर्षीय अत्यंत कुशल और कर्मठ महिला से सम्पर्क स्थापित किया। यह महिला आगे चलकर 'धूमकेतु' में आंद्री के बाद नम्बर दो बनने वाली थी। इस महिला ने पलायन करने वालों के लिए साइकिलों तथा भोजन का प्रबंध कर डाला और बास्क के तस्करों को स्पेन की पहाड़ियों में रास्ता बताने के लिए नियुक्त किया।

इसके बाद आर्नोल्ड ने उत्तर की तरफ के रास्ते में ट्रेनो के समय का पता लगाया व गुप्त संकेत भाषा इत्यादि निर्धारित की। उन्होंने पेरिस मे ऐसे गुप्त स्थानों की खोज की,जहां पलायनकर्त्ता आराम कर सकते थे तथा वेश बदल सकते थे। आंद्री ने दूसरी तरफ सैनिको के लिए नकली दस्तावेज तथा प्रमाणपत्र जुटाए। धन एकत्रित करने के लिए उसने अपने जेवर बेच दिए तथा आर्नोल्ड ने अपनी फर्म से पेशगी वेतन ले लिया। अब आंद्री का गुप्त नाम था 'दीदी'। उसके पिता का कोड़

नाम था 'पाल' तथा ग्रीफ के लिए 'टाटे गो' का सम्बोधन तय हुआ। पलायनकर्ताओं को 'पार्सल' अथवा 'बच्चे' के नाम से पुकारा जाना था।

इस तरह प्रारम्भ हुआ 'धूमकेतु' अर्थात् पलायन के अटूट सूत्र और जीवनदाई रेखा का जन्म। जून, सन् 1941 में 11 बेल्जियनवासियों व एक प्रौढ़ महिला को आंद्री ने 11 बार सोम्मे नदी पार करके ग्रीफ के हाथों में सुरक्षित पहुंचा दिया। यह 'धूमकेतु' का पहला पार्सल था। ग्रीफ ने भी 'पार्सल' को स्पेन की पहाड़ियां पार कराने में कोई गलती न की।

अगस्त में आंद्री और उसके पिता ने 8 बेल्जियन और एक स्काट सैनिकों का 'पार्सल' पार कराने की कोशिश की। आंद्री, दो बेल्जियमवासी तथा एक स्काट बच निकले लेकिन आर्नोल्ड और दल के दूसरे यात्रियों को जर्मन पुलिस ने पकड़ लिया। आर्नोल्ड को भयानक यातनाएं दी गईं लेकिन उस युवा बेल्जियमवासी के मुंह से 'धूमकेतु' का एक भी रहस्य न निकला।

आंद्री को पहला झटका तब लगा जब पहले पार्सल के 11 पलायनकर्त्ताओं को स्पेन की सरकार ने पकड़कर पुनः नाजियों को सौंप दिया। इस पर आंद्री ने तय किया कि वह ब्रिटिश सैनिकों को ही जर्मनों के शिकंजे से मुक्त कराएगी तथा उन सैनिकों पर ज्यादा जोर देगी, जो वापस जाकर पुनः नाजियों के खिलाफ युद्ध की शुरूआत कर सकें। उसने विमान सैनिकों की सुरक्षा की योजना बनाई और बिलबाओ स्थित ब्रिटिश कौंसुलेट पहुंचकर ब्रिटिश अधिकारियों को प्रभावित कर लिया। यह तय हुआ कि आंद्री की रुपए-पैसे से भरपूर मदद की जाएगी। उसे मार्गदर्शक दिए जाएंगे तथा आद्री का संगठन शुद्ध बेल्जियम होगा, उसमें पेशेवर खुफिया एजेण्ट नही होंगे, न ही कोई रेडियो सम्पर्क होगा और न किसी और किस्म का हस्तक्षेप होगा।

इस नई योजना ने 'धूमकेतु' को आशा का संदेश दिया। सन् 1941 के बड़े दिन तक आंद्री ने पांच सफल यात्राएं पूरी कर ली। 5 'पार्सल' नाजियों के कब्जे से मुक्त हो चुके थे। इस दौरान 'धूमकेतु' को एक नया उपहार मिला—स्पेन निवासी फ्लोरेंतिको नामक एक गाइड के रूप में, जो बाद में संगठन का सबसे बहादुर सदस्य साबित हुआ।

अब तक 'गेस्टापो' को आद्री के कारनामों की भनक लग चुकी थी। बड़े पैमाने पर उसकी खोज प्रारम्भ हो गई। आंद्री के पिता ने उसे सूचित किया कि वह फ्रांस में ही रह कर 'धूमकेतु' के काम का सचालन करे। ब्रसेल्स का काम स्वयं आंद्री के पिता देखने लगें। 'धूमकेतु' जर्मनों की नाक के नीचे से मित्र राष्ट्रो के सैनिकों को निकालने के कारनामें करने लगा। फ्लाइट सार्जेण्ट बिन को मृत घोषित करके 'धूमकेतु' के सदस्यों ने जर्मन बस्ती मे उसकी शव यात्रा निकाल डाली और इस तरह एक और सैनिक को आजाद करा दिया। पेरिस के एक स्टेशन पर नाजियों को 'धूमकेतु' ने गलत सूचना भिजवाई कि पादरी के वेश में एक विमान सैनिक फरार

हो रहा है। 'गेस्टापो' ने दर्जनों पादरियों को गिरफ्तार करके हवालात पहुंचा दिया। इस झूठी मुखबरी की आड़ में असली पलायनकर्ता आसानी से निकल गए।

□ □ □

फरवरी, सन् 1942 में आंद्री के ब्रुसेल्स स्थित मकान पर गेस्टापो ने छापा मारा, लेकिन उसके हाथ आंद्री की बड़ी बहन के अलावा कुछ न लगा। 6 सप्ताह बाद आंद्री घर लौटी लेकिन संयोगवश फिर गेस्टापो के चंगुल से बच निकली और फ्रांस भाग गई। उधर गेस्टापो अपनी सफलता के रूप में वह 'धूमकेतु' के तीन महत्वपूर्ण सदस्यो को गिरफ्तार करने में सफल हो गई।

'धूमकेतु' की कार्रवाइयो का प्रशंसक ब्रिटिश खुफिया विभाग इन गिरफ्तारियो से निराश हो गया। उसे लगा कि अब सम्भवतः 'धूमकेतु' की गतिविधियां रुक सकती है। तभी बेल्जियम के एक धनी युवक ग्राण्डइल ने 'धूमकेतु' का नेतृत्व सम्हाला और पूरे बेल्जियम को कई क्षेत्रों में बांट कर जून और अक्तूबर सन् 1942 की बीच 13 टुकड़ियो मे 54 हवाबाजों को मुक्ति के द्वार पर पहुंचा दिया। ब्रिटेन पहुंचकर इन विमान सैनिकों ने अपने संरक्षकों की जबर्दस्त तारीफ की। उन्होंने भीड़-भरी ट्रेनो में यात्रा करने, पुलिस की रोंगटे खड़ी कर देने वाली [illegible]च-पड़तालो, सुनसान देहाती इलाकों के मार्गों में रातें बिताने के उस [illegible] क्रम का वर्णन किया, जिसके आखिरी सिरे पर सैन सेबोस्तियन की स्वतंत्रतासूचक रोशनियां मौजूद थीं। सभी विमान सैनिकों की जुबान पर एक ही नाम था—आंद्री।

आंद्री का नाम 'धूमकेतु' का पर्याय बन चुका था। तभी गेस्टापो ने अपना लौह-प्रहार किया और 15 जनवरी, सन् 1943 की कुहरेभरी दोपहरी मे आंद्री को उस समय गिरफ्तार कर लिया, जब वह स्पेन की पहाड़ियों में 3 विमान-चालकों के साथ 37वी पलायन यात्रा पूरी कर रही थी। इससे पहले भी आंद्री 118 सैनिको को व्यक्तिगत रूप से आजादी का रास्ता दिखा चुकी थी।

जेल में आंद्री को कई पूछताछ कक्षो की यातनाओं से गुजरना पड़ा। कुल मिलाकर गेस्टापो उससे केवल एक सूचना उगलवा पाई कि आंद्री ही 'धूमकेतु' की मूल नियोजक है। ऐसा आंद्री ने अपने पिता को संदेह से मुक्त करने के लिए किया।

एक बार फिर ऐसा लगा कि अब शायद 'धूमकेतु' का प्रकाश बुझ जाएगा लेकिन 'फ्रैंको' नामक छद्म नाम वाले एक 23 वर्षीय बेल्जियन युवक ने आगे बढ़ कर संगठन का नेतृत्व सम्हाला और आंद्री की गिरफ्तारी के एक पखवाड़े के बाद ही विमान सैनिको का एक दल पुनः स्वतंत्रता के द्वार पर पहुंच गया। ग्राइण्डल गिरफ्तार हो चुका था। जर्मन गेस्टापो ने उसे जिस जेल में रखा, उसी पर दुर्भाग्यवश मित्र राष्ट्रों के विमानों ने बम वर्षा कर दी और ग्राइण्डल को अपने ही लोगों के हाथों शहीद हो जाना पड़ा। यह 'धूमकेतु' के जीवन की सबसे बडी विडम्बना थी।

सन् 1943 का वसंत मित्र राष्ट्रों की ओर से उत्तरी यूरोप पर खौफनाक बमबारी का दौर लेकर आया। आंद्री के पिता के नेतृत्व में हर माह 60 विमान सैनिक मुक्त कराए जा रहे थे। वृद्ध पिता में साहस तो था लेकिन आंद्री जैसी चालाकी न थी। उन्होंने गलती से एक ऐसे मार्गदर्शक को संगठन में भर्ती कर लिया, जो गद्दार निकला और और जिसकी मुखबिरी पर आंद्री के पिता और उनके सहायक पकड़ लिए गए। साहसी महिला ग्रीफ अभी भी बाहर थी और आंद्री द्वारा शुरू किए गए काम को आगे बढ़ा रही थी। पूरी गर्मियों में पलायन की गतिविधियां जारी रहीं।

20 अक्तूबर को ग्राइण्डल के आठ साथी ब्रसेल्स में ठीक उस जगह गोलियों से भून दिए गए, जहां 28 वर्ष पूर्व समान आदर्शों के लिए एडिथ कावेल नामक ब्रिटिश नर्स को गोली मारी गई थी। गोली से उड़ाए जाने वाले एक व्यक्ति ने अपने जीवन के अंतिम पत्र में लिखा--"मैं उस आदर्श के लिए मर रहा हूं,जिस पर हम सबका विश्वास है।"

जनवरी, सन् 1944 में 215 व्यक्तियों को आजादी के मुकाम तक पहुंचाने वाला 'फ्रैंको' पेरिस में गिरफ्तार हो गया। फरवरी तक 'धूमकेतु' के लगभग सभी संचालक गेस्टापो के हाथ में पहुंच चुके थे। 28 मार्च, सन् 1944 को आद्री के पिता को पेरिस में जर्मनो ने गोलियों से उड़ा दिया। आंद्री को आदर्श की राह पर चलाने वाले फ्रेड्रिक्स डि जोंग ने अपना बलिदान देकर स्वयं को 'धूमकेतु' के बलिदानियो की सूची में दर्ज करा दिया।

☐ ☐ ☐

धूमकेतु के 216 सदस्यों ने नाजी यातना-शिविरों में या तो गोली झेल कर अपना बलिदान दिया या वे भूख व बीमारियों से मारे गए। 'धूमकेतु' के लगभग 700 सदस्य युद्धकाल में बंदी बने रहे। अनेक सदस्यों ने भीषण यातनाओं के सामने भी घुटने न टेके? 'धूमकेतु' मित्र राष्ट्रों के सैनिकों में इतना लोकप्रिय था कि रायल एयर फोर्स के सार्जेण्ट जार्ज डुफे, जिनका विमान हालैण्ड मे मार गिराया गया था, ने कहा था "यह जानकारी कि अज्ञात मित्र नीचे तुम्हारी मदद करने के लिए प्रतीक्षा कर रहे हैं, किसी भी हवाई हमले पर जाते समय उसी तरह की राहत देती थी, जिस तरह की राहत एक अतिरिक्त हथियार से मिलती है।"

यह कथन अक्षरशः सत्य था क्योंकि सन् 1939 में विश्वयुद्ध शुरू होने से लेकर जून, सन् 1944 में समाप्त होने तक जो 2900 विमान सैनिक नाजियों के चंगुल से मुक्त हुए थे, उनमें से 770 अर्थात् एक चौथाई की जीवन-रक्षा का श्रेय 'धूमकेतु' को ही था।

'धूमकेतु' की संस्थापिका आंद्री नार्मण्डी युद्ध के बाद नाजियो की कैद से मुक्त हो गई। उसने अपना शेष जीवन इथियोपिया के कुष्ठ रोगियों की सेवा में अर्पित कर दिया। उसे 'जार्ज पदक' देकर सम्मानित किया गया।

अभूतपूर्व पलायन

दूसरे महायुद्ध के दौरान डंकर्क के बंदरगाह पर फंसे लाखों फौजियों को नाजी शिकंजे से बाहर निकालने के लिए किए गए प्रयासों में मात्र नौसेना ने ही नहीं वरन् कई देशों के साधारण पर जांबाज नागरिकों ने एक महान् भूमिका निबाही थी।

'किस्मत बहादुरों की मदद करती है'—इस कहावत को चरितार्थ किया डंकर्क के उस अभूतपूर्व और महान् पलायन ने। अगर हिटलर और गोयरिंग ने छोटी-सी रणनीतिक गलती न की होती तो वास्तव में ब्रिटेन को युद्ध में ऐसी पराजय से दो-चार होना पड़ता कि उसकी कमर ही टूट जाती।

डंकर्क के पलायन को सफल बनाने के लिए ब्रिटेन ने भारी कीमत चुकाई। यह कीमत उस विजय के समक्ष कुछ भी नहीं थी, जो बाद में नाजी जर्मनी व अन्य धुरी राष्ट्रों को हराकर मित्र राष्ट्रों ने प्राप्त की। डंकर्क के पलायन की घटना द्वितीय विश्वयुद्ध में विजय की नींव का एक महत्वपूर्ण स्तंभ थी।

15
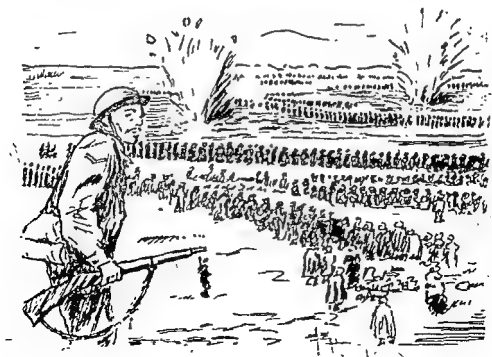
ऐसा जहाजी बेड़ा न कभी देखा गया था और न सुना गया था। इसे कुशल नाविक नहीं वरन् अमीर और गरीब, मशहूर और गुमनाम, बूढ़े और जवान मिल-जुल कर चला रहे थे। इस बेडे मे एक डोमिनिकन साधू की 'गुलजार' नामक नाव, बैंक ऑफ इंग्लैण्ड के एक क्लर्क की जीवन रक्षक नाव, आह फाग नामक चीनी की एक चाय लाने ले जाने वाली नाव, सन् 1919 मे एक बार समुद्र में डूब चुका 'ड्रेकुला' नामक जहाज, चीनी समुद्री डाकुओ से निबटने के लिए बनी 'मस्क्विटो' नामक गन बोट तथा नेपोलियन के युग में बनी 'डर्म्पलिग' नामक नाव शामिल थी। इस बेडे मे 'फिटहोप' नामक जहाज था, जिसका संचालन एक आयरिश चालक दल कर रहा था। 'दिनार्ड' नामक अस्पताली जहाज पर नर्से सवार थीं। केलीफोर्निया के जान फ़रगल्ड 'रासिया' पोत की 12 जीवन रक्षक नौकाओ में से एक का संचालन कर रहे थे।

यह अजीबो-गरीब बेडा कई लाख ब्रिटिश और फ्रांसीसी सैनिको को बचाने के लिए सीधे-सीधे मौत के मुंह में जाने के लिए तैयार था। उत्तर फ्रास के डकर्क बंदरगाह को जर्मन विमान तबाह कर चुके थे। इसे जीतने की जिम्मेदारी खुद हिटलर के वायुसेना प्रधान एयरमार्शल गोर्यरिंग ने ली थी। 'लुफ्तवाफे' (हिटलर नौ-वायु सेना) के विमान दिन-रात डंकर्क पर बमबारी कर रहे थे लेकिन मात खाए ब्रिटिश तथा जर्मन सैनिको को निकालने का मार्ग भी वही था। इंग्लैण्ड की सरकार की अपील पर सैनिकों को जर्मनी के चंगुल से निकालने के लिए इन लोगो ने जान की बाजी लगाने का बीड़ा उठाया था। डंकर्क बंदरगाह की रेत पर मौत और जिंदगी के बीच एक ऐसा सबसे बड़ा युद्ध लड़ा जाना था, जिसमे एक तरफ विश्व की कुशलतम और क्रूरतम वायुसेना थी तथा दूसरी ओर निहत्थे और सामान्य नागरिकों के मन का दृढ़ संकल्प था। इन दोनों के बीच अधर मे लटक रहा था इंगलिश चैनल के 150 मील लम्बे मोर्चे पर नाजी डिवीजनो की मार से बेहाल ब्रिटिश, फ्रांस तथा बेल्जियम की फौजों का भाग्य।

10 मई, 1940 को द्वितीय विश्वयुद्ध पूरी भयानकता के साथ छिड गया। 10 जर्मन बख्तरबंद डिवीजनो तथा 117 इन्फेंट्री डिवीजनों ने हालैण्ड, बेल्जियम और लक्ज़मबर्ग को हथिया लिया। इसके तुरत बाद 7 टैंक डिवीजनो ने आर्डेनेस के पहाडी जंगल को आनन-फानन मे पार कर लिया और यूरोप की न टूटने वाली दीवार समझे जाने वाले फ्रांस को देखते ही देखते धूल में मिला दिया। मित्र राष्ट्रों के

फौजी विशेषज्ञ समझते रहे कि इस पहाडी जंगल को पार करना असंभव ही है। जब ब्रिटिश फौजों ने जनरल गोर्ट के नेतृत्व में आगे बढ कर जर्मन फौजों को रोकना चाहा तो उन्हें पहली बार नाजी हथियारों की श्रेष्ठता का अहसास हुआ। दरअसल मित्र राष्ट्रों की फौजे प्रथम विश्व युद्ध के जमाने के हथियारों से लैस थी, जो जर्मनों के आधुनिक हथियारों का मुकाबला करने में नितात असमर्थ थे।

इंगलिश चैनल के पास उत्तरी फ्रास में घिरे हुए 390,000 सैनिको की विवशता का सबसे बडा हास्यास्पद पहलू यह था कि जनरल गोर्ट के नेतृत्व में ये सैनिक 8 माह तक 250 मील लम्बी मैगिवोट रेखा को प्रथम विश्वयुद्ध शैली की खाइयों तथा अभेद्य पिल बाक्सों से सुदृढ करके जर्मन हमले की प्रतीक्षा करते रहे थे। इन सैनिको की निश्चितता का आलम यह था कि वे आस-पास के हजारों ग्रामों में घूम-फिर कर कहवाखानों मे मौज उडा रहे थे और ग्राम-बालाओं से दोस्ती बढ़ाने में व्यस्त थे। सैनिकों की इस अय्याशी को जर्मनी ने जान-बूझ कर बढ़ावा भी दिया। यहां तक कि उनके विमानों ने उन ग्रामों की महिलाओं के लिए बमो की जगह शृगार प्रसाधन भी बरसाए क्योंकि कुछ फ्रांसीसी महिलाओं ने एक अखबार में यह शिकायत छपवाई थी कि उन्हें शृगार प्रसाधन नहीं मिल रहे हैं।

जब जनरल गोर्ट की फौजे पूरी तरह पराजित हो गई और उनके बचने की कोई उम्मीद न रही तो 26 मई, 1940 को ब्रिटिश युद्ध-मंत्री ने उन्हें पीछे हटने का आदेश दे दिया लेकिन गोर्ट के सामने समस्या यह थी कि उनके लिए पीछे हटने की भी कोई गुजाइश नही थी। उन्होने युद्ध मंत्री को तार भेज कर बताया कि पीछे हटने के चक्कर में फौज के काफी बडे हिस्से का सफाया हो जाएगा। हथियार भी नष्ट होंगे। वास्तव मे फौज में भर्ती होते हुए गोर्ट ने कभी सोचा भी न था कि वे ब्रिटिश सेना का उसकी सबसे बड़ी पराजय में नेतृत्व करेंगे। अब केवल एक ही रास्ता था कि उनकी फौज डंकर्क के बंदरगाह से होकर भाग निकलें। वहां तक पहुंचने के लिए 50 मील लम्बा और 15 मील चौड़ा गलियारानुमा प्रदेश लड़ते हुए पार करना था। एक ओर लगभग मृत्यु निश्चित थी, दूसरी ओर 3 लाख सैनिकों के युद्धबंदी बनने की आशंका मुह बाएं खडी थी।

25 मील लम्बा डंकर्क का तट जर्मन विमानो की बमबारी से जहाजो की कब्र नाम से जाना जाने लगा था। जाहिर था कि ब्रिटिश फौजों को छोटी-छोटी नावों से इंगलिश चैनल पार करना था। इस मोर्चे पर युद्ध प्रारम्भ होते समय अंग्रेजो के पास 202 विध्वंसक पोत थे। उनमें से केवल 40 शेष बचे थे लेकिन उनमे आदमी ढोने की गुंजाइश नहीं थी। व्यापारिक जहाजो से फौजियों को ढोने का काम लिया जा सकता था लेकिन उनमें हवाई-हमलों से अपनी रक्षा करने की सामर्थ्य नहीं थी।

ब्रिटिश नौसेना के एडमिरल रैमसे इस बचाव अभियान पर लगाए गए। प्रारम्भ में रैमसे का विचार था कि मौजूदा हालत में 45 हजार से अधिक सैनिकों को बचाकर इस ओर नहीं लाया जा सकता।

इस घनघोर निराशा में कहीं से कोई उम्मीद की किरण नहीं नजर आ रही थी। ऐसे में अचानक द्वितीय विश्वयुद्ध की रणनीति ने एक ऐसा पलटा खाया, जिसमें डंकर्क के तट पर पराजय के अपमान और मृत्यु के मुकाबले आजादी और जीवन का पलड़ा भारी हो गया।

23 मई को जर्मन टैंक डंकर्क से 12 मील की दूरी पर रह गए। नाजी जनरल गर्ड वाक रुण्डस्टेड इस हमले का नेतृत्व कर रहे थे। इस 65 वर्षीय जनरल को रोमेल जैसे नाजी जनरलों की तरह टैंकों के धुआंधार हमले में यकीन न था। वह पैदल सेना और टैंको में ज्यादा अंतर रखना खतरे का सूचक मानता था। इसलिए उसके हमले की गति धीमी थी तथा वह बीच-बीच में टैंको के बढने को रोक देता था। इसी वजह से कमाण्डर गोर्ट के सैनिक डंकर्क पहुंच पाए तथा उन्हें वहा से भाग निकलने का मौका मिल सका।

पराजित फौजों के पक्ष में दूसरा संयोग यह हुआ कि स्वयं हिटलर ने अचानक इस मोर्चे का निरीक्षण किया और टैंकों का हमला स्थाई रूप से रोक दिया गया।

हिटलर का ख्याल था कि डंकर्क को जीतने की जिम्मेदारी 'लुफ्तवाफे' की है। दरअसल डंकर्क को वायुसेना के जिम्मे कर देने का आग्रह गोयरिंग का था। हिटलर की राजनीतिक चाल यह थी कि ग्रेट ब्रिटेन उसके साथ संधि कर ले और उसे पूरे यूरोप का शासन सौंप दे। डंकर्क पर अंतिम हमला करके वह राजनीति की बिसात पर अपने मोहरों की चाल बिगडने देने के लिए तैयार नही था। युद्ध की दृष्टि से उसका यह निर्णय गलत था। उसके कई जनरलो ने भी इस निर्णय की आलोचना की। उनका ख्याल था कि डंकर्क को छोड कर उन्हे ब्रिटिश फौजो को भाग निकलने का मौका नहीं देना चाहिए लेकिन हिटलर तथा गोयरिंग अपने मत पर दृढ बने रहे। उधर ब्रिटिश फौजें डंकर्क के बंदरगाह की हिफाजत करने की तैयारियां करतीं रहीं। चर्चिल ने तय किया कि किसी भी कीमत पर डंकर्क के बंदरगाह की रक्षा की जाएगी और हिटलर की चालबाजियों का मुहतोड जवाब दिया जाएगा।

एडमिरल रैमसे ने कैप्टन टेनैंट को डंकर्क भेजकर ब्रिटिश फौजियो को इगलिश चैनल पार कराने की जिम्मेदारी देने का फैसला किया। सोमवार, 27 मई को डल्फहाउण्ड विध्वंसक पर टेनैंट डंकर्क के लिए रवाना हुए। डोवर पार करते ही जहाज पर हवाई हमले शुरू हो गए। दो घंटे की बमबारी के दौरान ब्रिटिश विध्वंसक गोले छोडता व ऊपर से गिरने वाले बमों मे कतराता हुआ चलता रहा। जब वह डंकर्क के पास पहुचा तो बंदरगाह की बरबादी देखकर टेनैंट का दिल बैठ गया। जलते हुए तेल शोधक कारखानों से निकलने वाला काला धुआं आसमान को ढक रहा था। मीलों लम्बे गोदाम एक सिरे से दूसरे सिरे तक धू-धू करके जल रहे थे। तिस पर ऊपर से जर्मन विमानों की बमबारी अभी तक जारी थी। लंदन से बातचीत करने के लिए केवल एक टेलीफोन लाइन साबुत बची थी, जिस पर आए

आदेशों को भी गलत समझ लेने के कारण सौ से ऊपर विमान भेदी तोपें बरबाद हो चुकी थीं। 30,000 छोटे और 15,000 भारी बमों की मार से एक हजार स्त्री, पुरुष और बच्चे मौत के घाट उतर चुके थे।

टेनैंट ने कार्यवाही शुरू की। उनका स्टाफ 50-50 की टुकड़ियों में रेत के टीलों पर हथियारबंद खड़ा हो गया। इन टुकड़ियों को धीरे-धीरे पानी के किनारे बढ़ना था। ब्रिटिश जहाज क्वीन ऑफ चैनल को तट पर लगने की आज्ञा दे दी गई और उसमें 7669 सैनिक बैठाकर इंग्लैण्ड पहुंचा दिए गए। यह बचाव की पहली खेप थी।

यह रफ्तार संतोषजनक नहीं थी। अगले दिन 11 जहाज, अनेक विध्वंसक तथा दूसरे स्टीमर आ पहुंचे। मंगलवार के दिन भयानक बमबारी के बीच 17,804 फौजी बचा लिए गए। बुध का दिन जर्मन विमानों के भयानक हमले तथा रायल एयर फोर्स, ब्रिटेन द्वारा उसके जवाब का दिन था। जर्मन स्टूका विमानों के हमले के शिकार होने वाले फौजियो के खून से डंकर्क की रेत लाल हो रही थी। 'ग्रेनेड' नामक विध्वसक पर भी बम गिराए गए। एक ट्रालर ने उसके विध्वंसक को खींचकर बदरगाह से दूर खडा कर दिया, फिर भी उसकी मैगजीन में आग लग गई और हजारो कारतूसों में विस्फोट हो गया। इस भीषण परिस्थिति में भी ओरिओल जहाज पर 25,000 ब्रिटिश सैनिक इंग्लैण्ड के लिए रवाना होने में सफल हो गए।

कमाण्डर गोर्ट का तरीका यह था कि उनकी सेना का अगला दस्ता जर्मनों से लोहा ले रहा था तथा बाकी हिस्सा पीछे हटने का क्रम जारी रखे हुए था। अब तक 2 लाख सैनिक डकर्क पहुंच चुके थे। ये सैनिक तट की रेत पर पंक्तिबद्ध हुए भाग निकलने के लिए नावो का इंतजार कर रहे थे। इनमें से 50 हजार सैनिकों को पहले नावो में बैठना था।

इसी बीच ब्रिटिश सरकार द्वारा जारी की गई अपील के मुताबिक डंकर्क बंदरगाह की ओर वह अजीबो-गरीब जहाजी बेडा चला, जिसका वर्णन इस कहानी के आरंभ में किया गया है। इस बेड़े में अनेक नावें ऐसी थीं, जो छोटी-छोटी नदी यात्राओं के लिए बनी थी। इससे पहले वे कभी समुद्र में उतरी ही न थी। इनके पास बमबारी या समुद्री हमलो से सुरक्षा का कोई प्रबंध न था। एक नाविक दल के पास खाने के नाम पर सिर्फ बिस्कुट थे। एम्बुलेंस के जहाज को पट्टियां सप्लाई करने के लिए लोगों ने अपने तौलिए, चादरें और कमीजें फाड़ कर दीं। यह बेड़ा जब डंकर्क के पास पहुंचा तो अनुभवी नाविक भी आश्चर्यचकित रह गए। उस समय डंकर्क की 20 लाख टन तेल वाली टंकियो से हजारो फुट ऊंची और एक मील लम्बी लपटें उठ रही थीं। फ्रांसीसी घोड़ों के जले हुए गोश्त तथा तम्बाकू व लहसुन की मिली-जुली दुर्गंध धुएं के साथ मिलकर हवा में फैल रही थी। रेत पर लाइन लगाए खडे हजारों सैनिकों में से कई जहाजो के आने के भ्रम के कारण पानी में कूद कर जान गंवा बैठे थे। कभी-कभी छोटी-सी अकेली नाव के पहुंचने पर सीमा से अधिक सैनिक उसमें बैठ जाते और नाव भी उलट जाती तथा सैनिक भी डूब जाते। सैनिक भूख-प्यास से भी परेशान थे।

दूसरी ओर कमर भर पानी में खड़ा एक सार्जेण्ट हथेली पर ताश के पत्ते और सिक्के रख कर जादू दिखा रहा था। चार इंजीनियर मोटरसाइकिलों पर कलाबाजी दिखा रहे थे। एक जगह हारमोनियम पर समूहगान चल रहा था। रेतीले तट पर क्रिकेट भी चल रही थी। जैसे ही बम बरसाने वाले विमान आते, खिलाड़ी अपनी जगह से हट जाते तथा विमानों के जाते ही खेल फिर शुरू हो जाता। इसी वातावरण में गुरूवार को 53,852 सैनिक इंगलिश चैनल पार कर सके।

शुक्रवार को वह जल भाग एक विशाल शिपयार्ड में परिवर्तित हो गया क्योंकि वहां टूटे-फूटे जलवाहनों की मरम्मत का अभियान छिड़ गया था। ऊपर से नयी नावों के आने का क्रम भी जारी था। इनके नाविकों के पास हैलमेट भी नहीं थे और वे कांसे की बाल्टियों से अपने सिर ढके हुए थे। एक जीवन-नौका ने तो 30 बार तट और जहाजों के बीच फेरा लगाया और एक बार में 160 व्यक्तियो को ढोती रही। इस नाव ने खराब हो चुकी नावों को घसीटने का भी काम किया। इस तरह दुश्मन की गोलियों की बौछार के बीच में एक जीवन नौका ने 2800 व्यक्तियों को ढोया। इस तरह के उदाहरणों से सैनिकों का साहस भी बढ़ा। उन्होंने जहाजो तक पहुंचने के कई तरीके निकाल लिए। लकड़ी के टुकड़ों के सहारे तैरते हुए तमाम सैनिक जहाजों तक पहुंच गए। शुक्रवार को 68,014 सैनिक जहाजों में सवार हो सके।

शनिवार को जर्मन विमानों ने पूरे जोर-शोर से हमला किया। इस बार रायल एयर फोर्स ने उसका कड़ा मुकाबला किया और 65 हजार ब्रिटिश और 50 हजार फ्रांसीसी सैनिकों के लिए डंकर्क की रेत पर चलते हुए जहाजों तक पहुंचना आसान हो गया। 64,429 सैनिकों की एक और खेप डंकर्क रवाना हो गई।

सैनिकों की सुरक्षा यात्रा रात में भी होने लगी। अंतिम दिनों मे 52,921 सैनिकों की जान बचाई गई। इस तरह कुल 3,38,226 सैनिकों की प्राणरक्षा की गई, जिनमें 1,39,911 सैनिक ब्रिटेन के अलावा अन्य मित्र राष्ट्रों के भी थे।

प्रधानमंत्री चर्चिल ने इस बचाव अभियान की सफलता पर प्रसन्नता जरूर जाहिर की लेकिन यह भी कहा कि इस प्रकार के बचाव अभियानो से युद्ध नहीं जीते जाते। इस अभियान मे 200 जहाज, 177 विमान 40 प्रथम श्रेणी के बमवार 90 डिवीजनों का गोलाबारूद, 2000 तोपें, 60000 गाडियां तथा 76,000 टन अन्य सामान नष्ट हो गया। हिटलर का कहना था कि डंकर्क का तट ब्रिटेन के लिए विनाश का तट बन गया है।

लेकिन इंग्लैण्ड यह मानने के लिए तैयार न था। उसी दिन दोपहर बाद चर्चिल ने हाउस ऑफ कामंस मे अपना ऐतिहासिक भाषण दिया "हम न तो हार मानेंगे, न ही झण्डा झुकाएंगे। हम अंत तक लड़ेंगे। हम फ्रांस में लडेंगे, हम समुद्रों मे लड़ेंगे, खाड़ियों में लडेंगे..... हम हर कीमत पर अपने द्वीप की रक्षा करेंगे। हम समुद्र-तटों, हवाई-अड्डो पर लड़ेंगे, खेतों और सड़कों पर लडेंगे। हम जंगलो और पहाड़ों पर लड़ेंगे। हम कभी झण्डा नहीं झुकाएंगे।"

वह अनोखा जनरल

जनरल जिराड की मृत्यु सन् 1949 में हुई। उन्हें उस कब्रिस्तान में दफनाया गया, जहां नेपोलियन जैसे महान् सेनापतियों को दफनाया गया था। जिराड को उनके महान् सैनिक कारनामों के लिए नहीं वरन् दो बार जर्मनों की अभेद्य कैद के भागने के लिए याद किया जाता है। पहली बार प्रथम विश्वयुद्ध में जब वे मात्र कप्तान थे, संगीन युद्ध में घायल हो जाने के बाद उन्हें पकड़ा गया लेकिन वे बेल्जियम में बने हुए युद्धबंदी शिविर से भाग निकले। दूसरी बार, जब वे जनरल हो चुके थे, द्वितीय विश्वयुद्ध की शुरूआत में उन्हें नाजियों ने गिरफ्तार कर लिया। इसके बावजूद भी उन्होंने फौरन भागने की योजना बना कर एक ऐसा दुस्साहसिक कारनामा कर डाला, जिससे जर्मनों की झुंझलाहट का ठिकाना न रहा और जब जिराड को वापस भेजने की जर्मन-मांग को भी ठुकरा दिया गया, उसके बाद...।

16

अप्रैल, सन् 1942 का एक दिन नाजी जर्मनी की कुख्यात पुलिस गेस्टापो के एजेण्ट स्टुटगार्ड के निकट एक सवारी रेलगाड़ी में तमाम यात्रियों के परिचय-पत्रों की जांच कर रहे थे। परिचय-पत्रों में यात्रियों की शारीरिक विशेषताएं भी लिखी हुईं थीं। गेस्टापो एजेण्टों की निगाह सहसा लम्बाई वाले खाने पर अटक जाती और वे यात्री की लम्बाई की परिचय-पत्र में लिखी लम्बाई से तुलना करने लगते। दरअसल उन्हे एक 6 फुट लम्बे यात्री की तलाश थी।

इसी रेलगाड़ी में जर्मनों की अफ्रीका कोर्प्स का एक युवक लेफ्टीनेंट बैठा हुआ था। उसी के पास एक 6 फुट लम्बा लगभग 69 वर्षीय प्रभावशाली व्यक्तित्व का व्यापारी मौजूद था। जिस समय गेस्टापो का एक एजेण्ट उन दोनों के पास पहुंचा, वह व्यापारी युवक सैनिक अफसर को बता रहा था कि जनरल रोमेल कौन-सी योजना अपनाकर अंग्रेजों को पराजित कर सकते हैं। उसके हाथ इस तरह गति कर रहे थे कि जैसे वह हाथों से ही पूरी योजना का चित्र खींच देना चाहता हो। जर्मन लेफ्टीनेट आश्चर्य और उत्सुकता से उस व्यक्ति को देखे जा रहा था।

अचानक गेस्टापो के एजेण्ट ने उस 6 फुट लम्बे व्यापारी के कंधे पर थपकी दी, "महाशय, कृपया कागजात दिखाएं।" अफ्रीका कोर्प्स के युवक लेफ्टीनेट को लगा कि इस एजेण्ट ने रंग मे भंग कर दिया है। वह जनरल रोमेल की रणनीति के बारे मे अपने विचार व्यक्त करने के लिए बेचैन था। इसलिए उसने गुस्से से भरकर गेस्टापो एजेण्ट को झिडक दिया, "दफा हो जाओ, तुम्हारी बीच मे बोलने की हिम्मत कैसे हुई?" मजबूरन गेस्टापो एजेण्ट को माफी मांगनी पड़ी।

कुछ दिन बाद, यही वृद्ध व्यापारी एक अन्य स्टेशन पर रेंगती हुई एक रेलगाड़ी को पकडने के लिए भागा जा रहा था। उसकी चाल में कोई लगड़ाहट नहीं थी। उसकी ऐनक गिरने वाली थी और वह हांफ रहा था। लगता था कि जैसे वह रेलगाड़ी पर चढ़ नहीं पाएगा। एक गेस्टापो एजेण्ट ने झपट कर इस लम्बे-चौड़े व्यापारी की रेलगाड़ी में चढने में मदद की। इस पूरी मामले मे मजे की बात यह थी कि गेस्टापो का यह एजेण्ट जिस शिकार की तलाश में आया था, उसे भगाने में उसने खुद ही मदद की थी।

☐ ☐ ☐

आखिर वह रहस्यमय बूढा व्यापारी कौन था? गेस्टापो उसे क्यों तलाश कर रही थी?

इस तलाश की कहानी शुरू होती है 10 मई, सन् 1940 से। फ्रांस और जर्मनी में युद्ध चल रहा था। ला-केटेलट नामक जगह के करीब जंगलों से निकल कर जर्मन सैनिक टुकडियों ने एक फ्रांसीसी मशीनगन चौकी को घेर लिया। मोर्टार के गोलों की मार से जब वह ठिकाना पूरी तरह तहस-नहस हो गया, तब जर्मन कमाण्डर ने चिल्ला कर आदेश दिया कि जो कोई जिंदा बचा हो, वह आत्मसमर्पण कर दे। नाजी कमाण्डर के आश्चर्य का उस समय ठिकाना न रहा, जब एक छः फुट लम्बे और पकी सफेद मूंछों वाले एक व्यक्ति ने आत्मसमर्पण किया। इस व्यक्ति के कंधे पर पाच सितारे लगे हुए थे। जाहिर था कि वह कोई फ्रांसीसी जनरल था।

ये थे जनरल हेनरी आनर जिराड, जो दुर्भाग्य से अपने सैनिक जीवन में दूसरी बार युद्धबंदी बनाए गए थे। जनरल जिराड पहली बार प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान पकड़े गए थे। तब उन्हे जर्मनो की कैद से भाग निकलने में सफलता मिली थी। इस बार उनका भाग निकलना लगभग असम्भव था क्योकि जनरल की आयु 61 वर्ष हो चुकी थी। फौजी कैद से भागने के लिए शरीर में जिस युवकोचित शक्ति और कष्टसहिष्णुता की आवश्यकता पडती है, वह जनरल जिराड का साथ कभी का छोड़ चुकी थी।

जिराड को गिरफ्तार करके कोनीग्स्टोन के दुर्ग में ले जाया गया। अपनी वृद्धावस्था के बावजूद जनरल ने 150 फुट ऊची इस पहाड़ी पर बने किले से भागने का फैसला कर लिया। इस किले के सभी प्रवेश द्वारों पर दुहेरा पहरा था लेकिन इस बाधा ने भी जिराड को हतोत्साहित नहीं किया और उन्होंने धाराप्रवाह जर्मन भाषा बोलने की प्रेक्टिस शुरू कर दी।

जिराड को जेल के अधिकारियो ने पत्रादि लिखने की इजाजत दे दी थी। उनके पास अपने मित्रों द्वारा भेजे गए पैकिट तथा अन्य खाने पीने की सामग्री आती रहती थी। इन्ही सामग्रियों में जिराड की पलायन योजनाओं मे काम आने वाली चीजें छुपी रहती थीं। जैसे नक्शा, रस्सी बुनने हेतु सामान, रस्सी को मजबूत बनाने के लिए तांबे का तार तथा एक टेरेलीन का टोप।

17 अप्रैल, सन् 1942 को हेनरी जिराड ने अपने कमरे के छज्जे पर खड़े होकर नीचे गश्त लगाते हुए संतरी की तरफ झांका। जिराड की कमर से चाकलेट व बिस्कुट के रूप में भोजन का कोटा, टेरेलीन का हैट तथा बरसाती कोट का एक बण्डल बंधा हुआ था। जैसे ही संतरी गश्त लगाते हुए आगे बढ़कर आंखो से ओझल हुआ, वैसे ही जिराड ने बालकनी से रस्सी बांधी और 150 फुट नीचे उतरना शुरू कर दिया। हालांकि जिराड के हाथों मे दस्ताने थे लेकिन वह उतराई इतनी कड़ी थी कि दस्तानों के नीचे भी उनके हाथो की खाल छिल गई। फिर भी अंततः उन्होने नीचे उतरने में सफलता प्राप्त कर ही ली।

जमीन पर पैर टिकते ही जिराड ने लंगडाते हुए कुछ दूरी पर उगे हुए पेड़ो की आड़ ले ली। दरअसल, जिराड प्रथम विश्वयुद्ध मे अत्यंत घायलावस्था में जर्मनो के

हाथ लगे थे क्योंकि संगीनों से हुए एक युद्ध में उन्हें गिरफ्तार किया गया था। उस समय वे जनरल नहीं थे। उनका पद कप्तान का था। बेल्जियम के एक युद्धबंदी शिविर में उनका इलाज हुआ, जहां से वे भाग निकले लेकिन घावों की वजह से उनकी चाल में लंगड़ाहट रह गई थी।

पेड़ों की आड़ में पहुंचते ही जिराड ने अपनी मूंछे साफ कर दीं। उन्होंने अपना बरसाती कोट पहन लिया और टेरेलीन का हैट लगा लिया। दो घण्टे तक चलने के बाद वे बेड सचांडाऊ नामक स्थान पर पहुंचे और एक मुंडेर से टेक लगाकर पैकेट में से दोपहर का भोजन करने लगे। हेनरी जिराड के चेहरे पर भोजन करते समय ऐसी शांति थी, जैसे कुछ हुआ ही न हो। वास्तव में जर्मनों की कैद से भाग निकलने के बाद भी इस तरह के धैर्य और दृढ़ता का प्रदर्शन करना एक मारके की बात थी।

□ □ □

जनरल हेनरी आनर जिराड फ्रांसीसी सेना में एक प्रतिभाशाली सेनानायक के रूप में जाने जाते थे। प्रथम विश्वयुद्ध में जर्मनो को चकमा देकर भाग निकलने के बाद शांतिकाल में उन्होंने अफ्रीका के एक मेट्ज नामक जिले को शानदार तरीके से कमाण्ड किया। उसके बाद द्वितीय विश्वयुद्ध आया और वे लाओन के पास मित्र राष्ट्रों की सेनाओं के कमाण्डर-इन-चीफ बना दिए गए। जब जर्मन सेनाओं ने आर्डेन्नेस के जंगल के बाहर निकल कर हमलावर रुख अपनाया तो जिराड ने मोर्चे पर आकर सारी स्थिति देखने का निर्णय किया। जिस समय जर्मनो ने उन्हें गिरफ्तार किया, उस समय वे मशीनगन चौकी पर शायद इसी मकसद के लिए मौजूद थे।

बहरहाल, दोपहर का भोजन करते-करते जिराड को एक युवक का इंतजार करना था। जेल से लिखे गए अपने पत्रों में छिपे कोड से उन्होंने यह इंतजाम कराया था। जनरल की पत्नी उस कोड को पढने मे समर्थ थी।

ठीक 1 बजे दोपहर एक पतला-दुबला युवक अपने एक ही हाथ में सूटकेस और हैट पकड़े हुए टहलता हुआ उनके पास आया। दरअसल एक ही हाथ में सूटकेस और हैट पकड़ना एक संकेत था, जिसके माध्यम से दोनो को एक दूसरे की शिनाख्त करनी थी।

वे दोनों रेलवे स्टेशन पहुंचे और पहली रेलगाड़ी आते ही उस पर सवार हो गए। डिब्बे मे पहुंचते ही दोनो शौचालय में घुस गए। जिराड ने सूटकेस खोला। उसमें जिराड के वे कपडे थे, जिन्हे वे पेरिस के भद्र नागरिक समाज में पहना करते थे। सूटकेस में कुछ परिचय पत्र भी थे, जिन पर उद्योगपति की तस्वीर लगी हुई थी, जिसकी शक्ल मूंछ रहित जिराड से मिलती-जुलती थी। कुछ मिनट बाद शौचालय से जो व्यक्ति बाहर निकला, वह बरसाती कोट पहने हुए कोई भगोड़ा नहीं था, वरन् एक सभ्रांत-सा लगने वाला व्यापारी था, जिसके चेहरे पर आत्मविश्वास की छाप थी और बदन पर कीमती कपड़े।

जिराड जानते थे कि सीमा पर मौजूद पहरेदार विशेषरूप से सतर्क कर दिए गए होंगे और भागे हुए जनरल की खोजबीन तेज कर दी गई होगी। उनके सामने पुनः गिरफ्तारी से बचने का एक ही रास्ता था कि वे गेस्टापो के कुटिल एजेण्टों की नाक के नीचे, उन्हे धोखा देते हुए रेलगाड़ी द्वारा लगातार यात्रा करें। केवल इसी तरह वे जर्मनी से बाहर निकल सकते थे। जिराड ने ऐसा ही किया और कई बार गिरफ्तारी से बाल-बाल बचते हुए वे सीमा पार कर गए।

लेकिन जब जिराड ने फ्रांस की सीमा में प्रवेश किया तो उस हिस्से पर जर्मन सेनाओं का कब्जा हो चुका था। उन्हें उम्मीद थी कि वे कोशिश करके फ्रांस के स्वतंत्र हिस्से में पहुंच जाएंगे लेकिन उन्होंने देखा कि जर्मन संतरी 5 फुट 11 इंच से लम्बे प्रत्येक व्यक्ति को रोक रहे थे। इसलिए वे तुरंत वापिस हुए और फिर रेलगाडी द्वारा दक्षिण-पूर्व जर्मनी को पार किया व स्विट्जरलैण्ड की सीमा पर पहुंचे। दुर्भाग्य से स्विस सीमा भी जर्मनों ने पूरी तरह बंद कर रखी थी।

यहां भी जिराड ने आशा नहीं छोड़ी और पहाड़ों से जाने वाले कठिन रास्ते को पकड़ने का निश्चय किया। पथरीली चट्टानों और चोटियों के बीच अत्यंत कठिन और घुमावदार रास्तो पर चलना वृद्ध और लंगडाने वाले जनरल के लिए आसान न था लेकिन अपने अद्भुत संकल्प के सहारे जिराड ने पहाड़ी रास्तों को पार करना शुरू किया। एक रात अचानक उन्हें तीन संगीनधारी रायफलों ने घेर लिया। जब उनमें से एक सिपाही स्विस बोली में बोला तो जिराड ने समझ लिया कि वे सुरक्षित इलाके मे हैं।

ये सिपाही जिराड को बैसल ले गए जहा उन्होने अपना असली परिचय दिया। जैसे ही जर्मनों को पता चला कि जिराड उनकी पहुंच से बाहर हो गए हैं, उनकी झुंझलाहट का ठिकाना न रहा। स्विस अधिकारियों ने जिराड को वापस भेजने की जर्मन मांग ठुकरा दी।

जिराड जिस तरह फ्रांस के स्वतंत्र हिस्से में पहुंचे—वह भी कम दिलचस्प किस्सा नहीं है। उन्होंने कार द्वारा यात्रा की और तेजी के साथ जल्दी-जल्दी कारें बदली जिससे गेस्टापो के एजेन्ट भ्रमित हो गए। गेस्टापो के हाथ में हमेशा गलत कार लगती और जिराड किसी अन्य कार में बैठे यात्रा कर रहे होते।

सन् 1914 में जब जर्मनों की कैद से जिराड पहली बार भागे थे, तो हालैण्ड पहुंचने पर उन्होने अपनी पत्नी को तार दिया था: "काम पूरा हो गया, स्वास्थ्य ठीक है—हेनरी"। इस बार उन्होंने फिर वही तार अपनी पत्नी के लिए भेजा: "काम पूरा हो गया, स्वास्थ्य ठीक है—हेनरी"।

□ □ □

इस महान् पलायन के बावजूद जनरल हेनरी जिराड अपने आपको आजाद महसूस नहीं कर पाए। इसकी वजह यह थी कि नाजियों ने उनके भाग निकलने को अपनी

प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया था। एक ओर तो फ्रांस की पराजय से दुखी जनता ने जिराड का वीरोचित स्वागत किया और उन्हे अपने मानस का नायक बना लिया। दूसरी ओर नाजियों ने उनकी हत्या करने की कोशिश शुरू कर दी क्योंकि मार्शल पेतां (फ्रांसीसी सेनाओं के सर्वोच्च सेनापति) ने जर्मनों की मांग ठुकराते हुए जिराड को वापस करने से इंकार कर दिया। इसलिए नाजी हत्यारों से बचने के लिए जिराड को भूमिगत होना पड़ा। आसमान से निकले और खजूर में अटके वाली कहावत चरितार्थ हो गई। जर्मन कैद से भागकर वे पुनः स्वतः स्वीकार की गई कैद में फंस गए थे।

फिर भी जैसे इतिहास की मंशा तो कुछ और ही थी। अक्तूबर 28, सन् 1942 को अल्जीरिया के अरब फार्म हाउस में लेफ्टीनेंट जनरल मार्क डब्ल्यू. क्लार्क ने मित्र राष्ट्रों के समर्थक फ्रांसीसी अफसरों से फ्रांसीसी उत्तर अफ्रीका पर मित्र राष्ट्रों के संभावित कब्जे के संबंध में वार्ता की। इन लोगों को एक ऐसे सेनापति की तलाश थी, जिसके आसपास विभिन्न फ्रांसीसी समूह गोलबंद हो सके। इस बैठक में इस कठिन काम के लिए जनरल जिराड का नाम प्रस्तावित किया गया।

कुछ दिनों के बाद फ्रांस के दक्षिणी तट पर एक पनडुब्बी रुकी। ब्रिटिश सीक्रेट सर्विस ने जिराड को पहले ही सूचना दे रखी थी। जिराड तैयार थे। इसी पनडुब्बी द्वारा उत्तरी अफ्रीका में अंग्रेजों और अमेरीकियों के मिले-जुले आक्रमण का नेतृत्व करने के लिए जनरल जिराड पहुंचे।

☐ ☐ ☐

जनरल जिराड की मृत्यु सन् 1949 में अपनी सैनिक सेवाओं के लिए कई पदक जीतने के बाद हुई। उन्हें उसी कब्रिस्तान मे सम्मानपूर्वक दफन किया गया, जहां नेपोलियन तथा फ्रांस के अन्य महान् सेनापतियों को दफन किया गया था।

●●

सरकण्डे की नाव से अंधमहासागर की यात्रा

13000 मील लम्बा और 4500 मील चौड़ा अंधमहासागर। गहराई इतनी कि दुनिया की सबसे ऊंची चोटी एवरेस्ट भी डूब जाए। क्या इसे मामूली सरकण्डों से बनी नाव से पार किया जा सकता है? पुरातत्वशास्त्री थोर हैरदाल का कहना था—हां! उनका दावा था कि कोई पांच हजार साल पहले मिस्र की प्राचीन सभ्यता इसी नाव के सहारे अंधमहासागर के पार तक पहुंची थी।

थोर हैरदाल की बात पर किसी को विश्वास नहीं होता था। मजाक उड़ाने वालों की भी कमी न थी। अब उनके पास इसके सिवा कोई चारा न था कि स्वयं एक ऐसी नाव बनाएं और उससे इतने बड़े महासागर को पार करके अपना दावा सच्चा साबित करें।

17
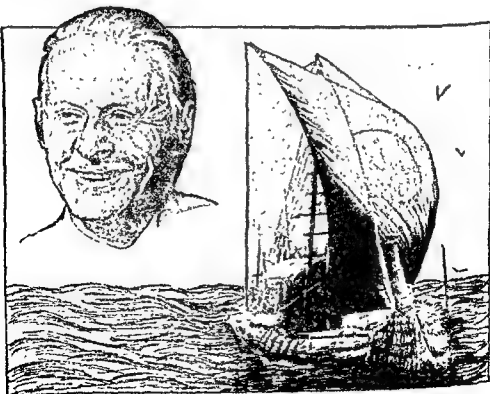
सन् 1969 की 9 जुलाई की सुबह। दक्षिण अमेरिका के तट के निकट अंधमहासागर मे एक दिन पूर्व आया तूफान शांत हो चुका था लेकिन सरकण्डों मे बनी हुई एक नाव अभी भी लहरों से जूझ रही थी। समुद्र के क्रुद्ध थपेडों ने रात भर में सरकण्डो को बांधने वाली रस्सियो और जजीरो को तोड़ दिया था। नाव अपनी ही लम्बाई में दो हिस्सों मे बंट चुकी थी तथा एक हिस्सा दूसरे से अलग होकर हिल रहा था। नाव पर सवार सात नाविको को लगा कि यह उनके जीवन का अंतिम क्षण है। अंधमहासागर में सरकण्डों की नाव खेते-खेते इन नाविकों को पूरे 46 दिन हो चुके थे। इस बीच उन्होंने भयानक से भयानक मुसीबतें झेली थी लेकिन हर बार अंधमहासागर को उनके सामने मुंह की खानी पडी थी। इस बार भी मौत के डर को भुलाकर ये नाविक महासागर को एक और शिकस्त देने पर आमादा हो गए थे। इन दुस्साहसी नाविकों के नेता थे थोर हैरदाल। अगर वह सरकण्डे की नाव को टूट जाने देते, तो दुनिया के सामने यह कभी साबित न हो पाता कि मध्य अमेरिका तथा पेरू के जंगलो में मिस्र की सभ्यता कई हजार वर्ष पहले कैसे पहुंची थी। अपने इसी दावे को सिद्ध करने के लिए नार्वे के इस पुरातत्वशास्त्री ने स्वयं सरकण्डे की नाव से अंधमहासागर पार करने का बीड़ा उठाया था क्योंकि मिस्रियों ने भी इस काम के लिए सरकण्डे की नावो का ही इस्तेमाल किया था। नाव के दोनो हिस्सो को रस्सियो और सूजे की मदद से सी दिया गया। सिलाई के छेदों में से समुद्र का नीला पानी ऊपर जरूर आता रहा लेकिन थोर और उसके साथियों ने नाव को पुनर्जीवन प्रदान करने में सफलता प्राप्त कर ली थी।

□ □ □

थोर हैरदाल ने 13 हजार मील लम्बे और 45 सौ मील चौडे अंधमहासागर को पार करने के लिए सरकण्डे की नाव के प्रयोग की प्रेरणा मिस्र के पुरातत्व सग्रहालयों में रखे मिट्टी के बर्तनो पर बने चित्रों से ली थी। इससे उत्पन्न जिज्ञासा को मजबूत आधार देने के लिए थोर ने पेरु की यात्रा की। उन्हें वहां भी प्राचीन मिट्टी के बर्तनों पर ऐसे ही चित्र मिले।

मोरक्को और पेरू के उन स्थानों की यात्रा करके, जहां सरकण्डे की नावो से मछलियां मारी जाती हैं, थोर ने मध्य अफ्रीका के देश चाड की राजधानी फोर्ट लामी की यात्रा की। यहां की विशालकाय झील (जिसके नाम पर ही उस देश का

नाम चाड पड़ा है) के किनारे बसे एक प्राचीन जाति के कबीले के सरदार से उसे भेंट करनी थी। यही जाति सरकण्डे की नावें बनाती थीं। इसके लिए थोर को चाड के सुल्तान से अनुमति लेनी पड़ी। कबीले के रौबीले सरदार ओमर ने उसे अपनी नावें दिखाईं। वे बड़ी-बड़ी नावें थी, जिनमें 10-12 व्यक्ति तक सवार हो सकते थे लेकिन थोर को तो एक छोटी नाव की ही जरूरत थी। सरदार से बातचीत करने में इसी कबीले के एक व्यक्ति अब्दुल्ला ने, जो फ्रांसीसी और अरबी भाषाएं जानता था, थोर की मदद की। थोर ने कबीले की एक नाव में बैठकर झील में नौका-विहार किया और नाव की लदान क्षमता का अनुमान लगाया। सरकण्डे की नाव की क्षमता ने उसे आश्चर्यचकित कर दिया।

थोर ने सुल्तान की अनुमति से नाव-निर्माता मिस्र से बुलाए। अब्दुल्ला दुभाषिए के रूप में उनके साथ गया। सरकण्डे इकट्ठे करने के लिए उसे इथोपिया जाना पड़ा, जहां के पर्वतीय अचल सरकण्डो से भरे पडे हैं। गले में सलीबें लटकाने वाले अश्वेत साधुओं के कबीले के एक ठेकेदार से उसने सरकण्डों का सौदा तय किया। इस तरह 5 हजार घन फुट सूखे सरकण्डों से नाव का निर्माण शुरू हुआ। चाड से आए कारीगरों मूसा और ओमर ने स्वीडन के इतिहासशास्त्री तथा मिस्र की नौका निर्माण कला के अध्येता लैण्डस्टार्म तथा फिरौन की देवदार से बनी प्राचीन नाव के जीर्णोद्धार मे लगे मिस्र के प्रमुख क्यूरेटर व पिरामिड की दीवारों पर बने चित्रों के अध्ययन की मदद से नाव बनाई गई। 26 फुट ऊंचा (ऊपर की ओर 23 फुट तथा नीचे की ओर 23 फुट चौड़ा) पाल, पतवारें, मस्तूल, लंगर, केबिन, उपयोगी वस्तुएं संग्रह करने के लिए मिट्टी के बर्तन, भारी-भारी घडों में पीने का पानी, कलपुर्जे,

थोर हैरडाल अपने साथियों के साथ

मरम्मत के लिए लकड़ी, दो टन खाद्य सामग्री इत्यादि सहित टनों सामान तैयार किया गया। 28 अप्रैल तक नाव बनकर तैयार हो गई।

थोर ने इस दुस्साहसिक यात्रा के लिए अपने अलावा छः अन्य देशों के 6 यात्री तलाश किए। पेशे से नाविक तथा रेडियो संचालन के जानकार अमेरिका निवासी नारमन; रूसी डा. अलेक्सांद्रेविच, इटली के कैमरामैन व 14 पर्वतारोहणों के अनुभवी कार्लो मोरी, अमेरिकी इण्डियन कबीले पर शोध करने वाले मैक्सिको के प्रोफेसर डा. सांतियागो, चाड के दुभाषिया व सरकण्डा विशेषज्ञ अब्दुल्ला, मिस्र के रसायन इंजीनियर, पेशेवर गोताखोर, बाल अभिनेता व जूडो चैम्पियन सौरियल ज्योर्जियस को थोर ने अपने साथियों के रूप में चुना। ये सभी व्यक्ति थोर की ही भांति खतरों से खेलने के शौकीन थे। साढ़े छः फुट लम्बे ज्योर्जियस की तो एक टांग पर घड़ियाल के काटने का निशान भी था। उसका कहना था कि वह जमीन से ज्यादा पानी में खुश रहता है।

नाव पर सात यात्रियों के देशों का प्रतिनिधित्व करने के लिए नार्वे, रूस, चाड, मिस्र, इटली, मोरक्को व मैक्सिको के झण्डे संयुक्त राष्ट्र संघ के झण्डे के साथ लहरा रहे थे। संयुक्त राष्ट्र का झण्डा शेष विश्व का प्रतिनिधित्व कर रहा था।

□ □ □

यात्रा को मई के माह में शुरू करना आवश्यक था क्योंकि बड़ा दिन सिर पर खड़ा था। अंधमहासागर के दूसरे छोर पर तूफान आने से पहले ही यात्रा खत्म हो जानी चाहिए थी। जिब्राल्टर से परे अफ्रीका का सबसे प्राचीन बंदरगाह साफी ईसा पूर्व से ही यातायात का केंद्र बन गया था, इसलिए इसी से 25 मई को थोर की सुनहरी नाव अंधमहासागर में उतार दी गई। मोरक्को के पाशा की पत्नी ने बकरी के दूध का घड़ा, जो स्थानीय आतिथ्य का प्रतीक था, नाव पर फोड़कर उसे सूर्य देवता को समर्पित करते हुए यह कामना की कि नाव में सूर्य के समान गति आए। पाशा की पत्नी ने इन्हें साफी नाम का ही एक बंदर भी भेंट किया, जो पूरे अभियान में नाविक दल के साथ ही रहा।

5 हजार साल पुराने नमूने की नाव को देश-विदेश के पत्रकारों ने 'हुर्रा' की ध्वनि के साथ विदा किया। विमानों व हैलीकाप्टरों ने अंधमहासागर की छाती पर तैरती नाव को अंतिम सलामी दी और सारा विश्व उत्सुकतापूर्वक प्रकृति के साथ किए जा रहे इस प्रयोग के सफल होने की दिल थामकर प्रतीक्षा करने लगा।

नाव ने सामने से बहती हुई उत्तर-पश्चिमी हवा पर काबू पाकर अपना रुख इच्छित दिशा में कर लिया और तट के समांतर बहने लगी। तब तक उस पर आफतों का हमला शुरू नहीं हुआ था। प्रकृति के कोप की पहली बानगी सरकण्डों की नाव को तब झेलनी पड़ी जब पहले ही दिन उसकी पतवारें टूट गईं। पतवारों की लकड़ी कमजोर थी। सातों नाविकों के मन आशंकाओं से भर गए। कुदरत से लड़ने का एक हथियार उनके हाथ से छिन चुका था। अब उन्हें ज्यादातर सागर की

हवा और लहरों पर भरोसा करना था। पहला दिन हवा की कृपा पर ही कटा। पाल में हवा भर जाने से नाव सही दिशा में स्थिर भाव से तैरने लगी। नाव के आस-पास से गुजरते हुए जहाज कहीं सरकण्डों की नाव से टकरा न जाएं, इसलिए कार्लो ने मस्तूल पर चढ़कर एक लालटेन बांध दी। थोर ने स्वयं रात भर पहरा दिया।

पतवारों के बाद अब पाल का नम्बर था। दूसरे दिन जब नाविकगण स्वयं को प्रकृति की गोद में अपेक्षाकृत सुरक्षित महसूस कर रहे थे, अचानक तेज आंधी आई। पाल को तानने वाला खम्भा टूट गया। अगर पाल को फौरन नीचे न किया जाता तो शायद वह फटकर चीथड़ों में बदल जाता। इस तरह यात्रा के दो दिनों में ही अंधमहासागर ने अपना मनमौजी स्वभाव दिखा दिया। थोर और उनके साथी तीसरे दिन भी पाल को दोबारा नहीं लगा पाए। हां, सागर की लहरों से जूझते हुए उन्होंने पाल, पतवार और खम्भे की मरम्मत करने में जरूर कामयाबी हासिल की।

चौथे दिन नाविक दल को ऐसा लगा कि जैसे अंधमहासागर में दिशा और समय उनके हाथ से निकल गए हों। रेडियो पर साफी बंदरगाह से संकेत मिलने में कामयाबी नहीं मिल पा रही थी। नारमन का चिंतित होना स्वाभाविक था। दिशा का ज्ञान नाविक दल को अफ्रीका के कनारी द्वीप समूहों पर समुद्र से थोड़े ऊपर उभरे खतरनाक रेत के टीलों से हुआ। पांचवां दिन फिर तूफानी था लेकिन इतना खतरनाक नहीं कि बर्फीली उत्तरी हवा नाव को कोई नया नुकसान पहुंचा पाती। छठवें दिन नाविकों ने पूरी नाव के व्यवहार में एक नया परिवर्तन महसूस किया। तूफान ने अपने थपेड़ों से नाव की रस्सियों को कड़ा कर दिया था। पानी में ज्यादा भीगने के कारण सरकण्डे फूल गए थे। इससे पूरी नाव की सरचना में जो कसाव आया, उससे नाव की गति में अधिक स्थिरता आती महसूस हुई। इस स्थिति का लाभ उठा कर नाविकों ने सरकंडे की नाव को एक बार फिर पाल से सजा दिया।

दो सप्ताह गुजरे। जून का पहला दिन आ पहुंचा। खतरनाक कनारी द्वीप समूह भी गुजर गया और नाव रेत के टीलों से टकराने से बची रही। इस स्थिति में आकर थोर और उनके साथियों को अपने अभियान के एक पहलू पर विश्वास जमने लगा कि सरकण्डों के इस ढांचे में समुद्र की छाती को काटने की क्षमता मौजूद है। आखिर उसमें अभी तक कोई खराबी नहीं आई थी। पतवारें भी फिर लगा दी गईं। सागर की ऊंची होती हुई लहरों से मुठभेड़ होने लगी। नाव की औसत रफ्तार साठ जहाजी मील प्रतिदिन थी।

□ □ □

थोर हैरदाल और उनके 6 यात्रियों की यह यात्रा आशा और निराशा के बीच एक झूले की तरह झूल रही थी। हर नया दिन उनके लिए एक नई चुनौती लेकर आता। कभी-कभी दिन का आधा भाग आराम और मौज-मस्ती में बीतता और नाविक दल कल्पना करने लगता कि गुजरी हुई कठिनाइयां अपना चेहरा उन्हें दोबारा नहीं

दिखाएंगी लेकिन तभी प्रकृति उनके इस सपन को निर्ममतापूर्वक तोड देती और उन्हें एक बार फिर अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जीवन-मरण के संघर्ष से दो-चार होना पड़ता। 5 तथा 6 जून के दिन सुहाने थे, जो समुद्र मे डुबकिया लगाकर नाव के सुनहरे पेंदे का निरीक्षण करने व शानदार भोजन करने में बीत गए। पर 10 जून का दिन उन्हें अंधमहासागर के गंदे, भूरे तथा हरे रंग के एक भाग के बीच गुजारना पडा। चारो तरफ पानी पर तेल के धब्बे और प्लास्टिक की बोतलें तैर रही थीं। अब्दुल्ला को नमाज के लिए वुजू का पानी, पीने के पानी वाले घड़े से निकालना पडा। उसी दिन आखिरी मुर्गी जिबह की गई। अब ताजे मास के रूप में केवल एक बतख बाकी थी, जिसे उन लोगो ने अभयदान दे दिया। अब उनके साथियों में एक प्राणी की और वृद्धि हो गई थी। साफी बदर के साथ-साथ बत्तख भी नाव पर गुजारे जा रहे इन अद्‌भुत क्षणों की भागीदार बन चुकी थी।

रात फिर तूफान से लडते गुजरी। सुबह होते-होते नाव का संतुलन बिगड गया। उसका पिछला हिस्सा पानी मे घुस गया। चाल मे रुकावट आ गई। भयानक सर्दी के बावजूद ज्योर्जियस, यूरी और नारमन ने गोता लगा नाव के पेंदे का निरीक्षण किया। पेंदे को अभी तक कोई नुकसान नही पहुचा था। धीरे-धीरे कोहरे और बारिश में डूबा 18 जून का दिन आया। उस दिन नाविको ने हिसाब लगाया कि वे अफ्रीका के उत्तर पश्चिमी तट की ओर एक हजार मील की यात्रा कर चुके है लेकिन नाव के पिछले भाग का पानी मे डूबना अभी भी जारी था। लहरें नाविको से टकराने लगीं। नाव के दो टुकडे हो जाने की पूरी सभावनाए पैदा हो गई। स्थिति अत्यंत नाजुक थी। थोर ने मन मे कहा कि अगर नाव टूट गई तो वे लाइफ बेल्ट का उपयोग नहीं कर पाएंगे। उसकी आशंका उस समय सच होते दिखाई दी जब उसने एक जबरदस्त लहर के नाव मे टकराने के बाद खुद को घुटनो-घुटनों पानी में खड़ा देखा। अब उन्हें असफलता और मृत्यु से बचने के लिए नाव के पिछले हिस्से का इलाज करना ही था। एक लकडी को आरी से चीर कर पतला किया गया। इसे नाव के पिछले हिस्से से बाध दिया गया। यह तरकीब काम आई। किस्मत ने बहादुरों का साथ दिया। नाव का पिछला सिरा थोड़ा ऊपर उठ गया।

परन्तु अभी और भी भयानक लडाई लडनी बाकी थी। मुश्किल से एक घंटा ही गुजरा होगा कि लहरो ने बची-खुची पतवारो को तोड डाला। पाल गिरने की जोरदार आवाज हुई। नाव एक तरफ झुकने लगी। आसमान ने भारी बारिश शुरू कर दी। अब कोई चारा नही था। नाविको को लगर डालने पडे। दो लगरो के सहारे नाव कुछ थमी लेकिन अब नाविक दल के सामने फिर वही समस्या थी। उनके पास खेने के लिए कुछ भी न था। वे एक बार फिर सागर की दया पर निर्भर थे।

नाव जब उष्णकटिबध के इलाके मे पहुची तो थोर को थोडी राहत महसूस हुई। नाविकों ने परेशानियों के असर को झटक देने के लिए शैम्पेन और तेज रूमी

शराब वोदका का इस्तमाल किया। कार्लो ने शानदार दावत का इंतजाम किया। यह पिछले 5-6 दिन के कठोर संघर्ष को बिना किसी मानवीय क्षति के पार कर लेने का पुरस्कार था। पर वेर्डे द्वीप समूह को पार करने के तुरंत बाद उन पर पहाड़ जैसी ऊंची-ऊंची लहरों के हमले शुरू हो गए। नाव बुरी तरह हिचकोले खा रही थी। उसका पाल भी टूट गया। केबिन में पानी भरने लगा। लेकिन इस दुर्दशा का दूसरा पहलू यह भी था कि सागर की लहरें नाव को 50-60 जहाजी मील प्रतिदिन के हिसाब से अमेरिका की ओर धकेलती रहीं।

☐ ☐ ☐

सागर से मुकाबला हो और उस में रह रहे भयानक जीव-जंतुओं से न निबटना पड़े—यह असम्भव है। थोर हैरदाल के दल को इन मुसीबतों से भी लड़ना था। 28 जून को लहरे शांत थीं। कपड़े धोये जा रहे थे। यात्रा के सुखों-दुखों की दास्तान डायरियों के पृष्ठों पर लिखी जा रही थी। तभी नाव के किनारे समुद्र में पैर लटका कर पतवार ठीक कर रहे नारमन पर बुलबुलेनुमा जहरीले कीड़ों ने हमला बोल दिया। ये कीड़े फौज की शक्ल में चलते हैं। इनके बेड़े का कुछ हिस्सा सैनिकों का काम करता है, कुछ हिस्सा पूरे बेडे के लिए भोजन जुटाता है। ये कीड़े अपने शिकार पर तेजाबनुमा पदार्थ छिड़कते चलते हैं।

नारमन की दिल दहलाने वाली चीख नें उसके साथियों का दिल हिला दिया। डा. यूरी उन्हे किसी तरह होश में लाए और परीक्षण के बाद उन्होंने घोषणा की कि नारमन की जान सिर्फ अमोनिया से बच सकती है। आदमी के पेशाब में अमोनिया होता है। नाविक दल के साथियों की पेशाब नारमन की टांगों पर दो घण्टे तक मली जाती रही। रोगी पीड़ा से कराहता और उछलता रहा लेकिन अंत में उसे नींद आ गई। अगले दिन उसकी हालत में कुछ सुधार आया। नारमन को पूरी तरह स्वस्थ होने में थोडा और समय लगा।

जब नाव दक्षिणी अमेरिका के तट के निकट थी, तो एक घडियाल ने सरकण्डों को अपने मुंह मे दबोच लिया। अब ज्योर्जियस की बारी थी। घड़ियालों से निबटने का उन्हे पुराना अभ्यास था। अफ्रीका का जूडो चैम्पियन अपना भाला लेकर घड़ियाल से लड़ने लगा। लड़ाई ज्यादा लम्बी नही चली। ज्योर्जियस की जीत हुई। नाविक का भाला घडियाल के मर्मस्थल को बेध गया।

सरकण्डे की नाव ने अब तक यह साबित कर दिया था कि अगर वह लकड़ी से बनाई गई होती तो अब तक निश्चित रूप से नष्ट हो गई होती, क्योंकि हर बार सागर के हमले से नाव में लगाई गई लकड़ी ही टूटी थी। सरकण्डे अपनी जगह सही सलामत थे। अब्दुल्ला का यह दावा सही सिद्ध हो रहा था कि जब तक सरकण्डों को रस्सिया जकडे रहेगी, तब तक नाव तैरती रहेगी।

सरकण्डे की नाव, समुद्री हवाओं और 6 सप्ताह के संघर्षपूर्ण जीवन ने नाविक दल की कल्पना को 5 हजार साल पीछे फेंकने में कोई कसर नही छोडी। कभी-कभी

उन्हें लगता कि उनमें तथा प्राचीन मिस्रियों में कोई अंतर नहीं है, जो अपनी सभ्यता का प्रकाश दूर-दूर तक फैलाने के लिए सरकण्डों की नावों पर सागरों को जीतने निकल पड़े थे। उनके उस सपने को रेडियो की आवाज तोड़ती। तब उन्हें भान होता कि एक प्राचीन दुस्साहस को दोहरा रहे हैं। रेडियो से उन्हें पता चलता कि कई देशों के रेडियो सूत्र नाविक दल की मदद करने के लिए तैयार बैठे हैं।

रेडियो द्वारा ही थोर ने संयुक्त राष्ट्र संघ के महामंत्री ऊ-थांत तथा सात राष्ट्रों के प्रधानों से शुभकामनाओं का आदान-प्रदान किया।

□ □ □

9 जुलाई का दिन यात्रा का सबसे खतरनाक दिन था जब नाव बीच में से दो टुकड़े हो गई। अंधमहासागर ने क्रोधित होकर सरकण्डों की नाव को अंतिम बार नष्ट-भ्रष्ट करने का प्रयास किया। शायद उसे पता नहीं था कि वह नाव केवल सरकण्डों से ही नहीं बनी थी वरन् उसमें मानवीय साहस और संकल्प की कभी न टूटने वाली रस्सी का भी योगदान था। नाव के दोनों भाग आपस में सी दिए गए। समुद्र की उद्दण्डता हार मानने से पहले भयानक वर्षा के रूप में एक बार और गरजी, लेकिन तब तक थोर के संदेश के मुताबिक उसकी पत्नी सफेद स्टीमर मे एक फिल्म फोटोग्राफर को लेकर बारबाडोस से पूर्व की ओर चल पड़ी थी। इस फोटोग्राफर को सागर-यात्रा अभियान की फिल्म उतारनी थी। बारिश का मुकाबला करने में बेचारी बत्तख की टांग टूट गई, जिसे डा. यूरी ने बाद में जोड़ा। जैसे-जैसे क्षितिज पर मौजूद एक सफेद धब्बा स्टीमर की शक्ल लेता गया, वैसे-वैसे नाविक दल पर संकट के बादल छंटते गए। नाविको ने स्टीमर की शरण ली। टूटी नाव को सागर में छोड़ दिया गया।

थोर ने अंधमहासागर को इसके बाद आयोजित किए गए दूसरे अभियान के दौरान पूरा करके पहले अभियान की कमी को पूरा कर दिया। इस बार उसने नाव के आकार में वृद्धि की। पतवार, मस्तूल, पाल तथा पिछले भाग की मजबूती का विशेष ध्यान रखा गया। अपने सभी पुराने साथियों के साथ साफी बंदरगाह से ही इस दूसरी यात्रा का शुभारंभ हुआ। पहली यात्रा के अनुभवों ने नाविक दल की दूसरी यात्रा को आसानी से सफल बना दिया।

8 जुलाई को सरकण्डे की दूसरी नाव बारबाडोस से केवल दो सौ जहाजी मील दूर रह गई। 12 जुलाई को पश्चिम से समुद्री चिड़ियों का झुण्ड सरकण्डो की नाव की ओर मुड़ा। 57 दिन बाद नाविकों ने धरती देखी। उनके सिर पर विमान चक्कर काटने लगे। इन्हीं विमानों में से एक में बारबाडोस के प्रधानमंत्री थे। 50 से अधिक नावों और जहाजो ने विजयी अभियानकर्ताओं की अगवानी की। 3270 जहाजी मील की समुद्री यात्रा विश्व इतिहास में थोर हैरदाल, उनके 6 साथियो तथा सरकण्डों की नाव को अमर बना गई।

●●

नेताजी और आजाद हिंद फौज

द्वितीय विश्वयुद्ध के उथल-पुथल भरे वातावरण में नेताजी सुभाष चंद्र बोस का अंग्रेजों की नजरबंदी से पलायन तथा धुरी राष्ट्रों के नेताओं से गठजोड़ ब्रिटिश साम्राज्यवाद की नींव हिला देने वाली घटना थी। यह दूसरी बात है कि विश्व राजनीति के वास्तविक शक्ति-संतुलन ने अंत में नेताजी को पराजित फासिज्म के साथ खड़ा कर दिया लेकिन निस्संदेह उनके सारे कामों के पीछे भारत को जैसे भी हो स्वतंत्रता दिलाने की भावना काम कर रही थी।

इस कहानी में, नेताजी के अभूतपूर्व पलायन, हिटलर से उनकी मुलाकात, दक्षिण पूर्व एशिया के प्रवासी भारतीयों की देशभक्ति तथा जापान की मदद से युद्धबंदियों की अनोखी फौज बनाने के विश्वप्रसिद्ध घटनाक्रम को संक्षेप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई है।

18

थोड़ी दूर जाकर चेहरे से गुस्सैल लगने वाला वह पठान कलकत्ता की एक पतली-सी गली मे मुड़ गया। दस कदम जाकर उसने एक दरवाजा खटखटाया। एक दुबले पतले युवक ने दरवाजा खोलकर पूछा "तुम कौन हो?" पठान ने गभीर स्वर में उत्तर दिया–"मैं हूं।" उस युवक ने चौंककर कहा–"अरे आप!" अंदर आइए।" पठान फौरन अंदर चला गया और युवक ने दरवाजा बंद कर लिया। अंदर जाकर वह युवक और पठान आपस में शुद्ध बंगला मे बातचीत करने लगे। थोडी देर बाद वह युवक उसी मकान से एक सम्भ्रात लगने वाले मौलवी के साथ निकला। ये मौलवी साहब फर्राटे के साथ शुद्ध उर्दू बोल रहे थे। दोनो एक छोटी-सी कार में बैठ गए। कार 50-60 मील प्रति घण्टे की रफ्तार से बर्दवान की ओर दौड़ने लगी। देखते ही देखते कार बर्दवान रेलवे स्टेशन पर पहुंच गई। प्लेटफार्म पर फ्रण्टियर मेल खड़ी थी। युवक ने मौलवी साहब के लिए पंजाब का टिकट खरीदा और उन्हें रेलगाड़ी पर चढ़ा दिया। फ्रण्टियर मेल पंजाब के लिए चल दी और युवक वापस कलकत्ता चला गया।

ये मौलवी साहब और कोई नहीं, वही गुस्सैल से लगने वाले पठान थे। इसी पठान को, उस पतली गली में घुसने से कुछ देर पहले अंग्रेजों के गुप्तचर विभाग के इंस्पेक्टर जनरंजन राय ने रोककर कुछ पूछताछ की थी। उस समय यह पठान ठेठ पश्तो लहजे में बोल रहा था तथा उसकी भाव-भंगिमाओं से गुस्सा टपक रहा था।

जासूस जनरंजन राय की ड्यूटी अंग्रेज सरकार द्वारा नजरबंद किए गए राष्ट्रीय आंदोलन के प्रसिद्ध नेता सुभाषचंद्र बोस के घर पर लगी हुई थी। घर के बाहर पुलिस की चौकी थी। चारों ओर जासूसों का जाल बिछा हुआ था। सुभाष बाबू को घर के बाहर चहारदीवारी तक जाने की भी इजाजत न थी। उनके पास आने वाली डाक पर सख्त सेंसर लगा हुआ था। पिछले कुछ दिनो से सुभाष बाबू ने भी अपने आपको एक कमरे में बंद कर लिया था। उन्होंने दाढ़ी बनानी भी बंद कर दी थी। वे चश्मा भी यदा-कदा ही लगाते थे।

26 जनवरी, सन् 1941 को पूरे दिन कलकत्ता में 'स्वतंत्रता दिवस' के उपलक्ष्य में होने वाली सभाओं में जासूसी करते-करते थके हुए जनरंजन राय ने जब सुभाष बाबू के घर के बाहर अपनी ड्यूटी शुरू की, तो थकान के कारण उसे झपकी आ गई। आधी रात के करीब जब उसकी आंख खुली, तो उसने देखा कि उसके सामने सड़क पर एक लम्बा-तगड़ा पठान आराम से चला जा रहा है। राय ने उसे आवाज

देकर रोका। जब वह नहीं रुका तो उसे शक हुआ और उसने धमकी दी—"रुको, वरना गोली मार दूंगा।" अब उस पठान को रुकना पड़ा।

पठान गुरगाबी जूते, पठानी कुर्ता, सलवार और सिर पर साफा पहने हुए था। जासूस राय ने उससे इतनी रात मे सडक पर घूमने का कारण पूछा। पहले तो पठान ने कुछ भी बताने से इंकार कर दिया लेकिन जब उसे हवालात में डाल देने की धमकी दी गई तो उसका स्वर कुछ नम्र हुआ, "अरे! मैं आपको पहचान नहीं पाया। मैं तो अपने घर से आ रहा हू। मेरी पत्नी बीमार है। डाक्टर ने मुझे अभी दवा लाने के लिए भेजा है।"

पठान के इस तर्क और पश्तो लहजे से प्रभावित होकर जनरंजन ने उसे जाने दिया। यह पठान जब मौलवी के वेश मे फ्रण्टियर मेल से दिल्ली रेलवे स्टेशन पर उतरा तो उसने पाया कि पूरा स्टेशन जासूसों और पुलिस वालों से भरा पडा है। जासूसों की फौज स्टेशन पर सुभाषचंद्र बोस को पकड़ने के लिए आई हुई थी, जो नजरबंदी के पहरे को धोखा देकर भाग निकले थे लेकिन मौलवी साहब अत्यंत आत्मविश्वास से उर्दू मे बातचीत करते हुए स्टेशन से बाहर निकल आए।

ठीक तीन दिन बात इस मौलवी को जासूस जनरंजन राय को फिर से चकमा देना पडा। दिल्ली रेलवे स्टेशन से फ्रण्टियर मेल में ही पेशावर जाने के लिए जिस डिब्बे में मौलवी साहब चढे, उसी मे जासूस जनरंजन राय पहले से बैठा हुआ था। दोनों ने एक दूसरे को देखा। मौलवी साहब ने फौरन अपने सूटकेस सहित डिब्बे से उतरने का उपक्रम किया लेकिन सी.आई.डी. इंस्पेक्टर ने उनसे अनुरोध किया वे उसी डिब्बे में बैठे। इस पर मौलवी साहब पूरे आत्मविश्वास के साथ जासूस की बगल में जम गए। कुछ दूर चलने के बाद रेलगाडी एक स्टेशन पर रुक गई। जासूस राय स्टेशन पर उतरा और प्लेटफार्म पर बने तार घर में घुस गया। मौलवी को संदेह हुआ कि कहीं यह पुलिस को तो बुलाने नही गया है। वास्तव में राय ने लाहौर तार भेजा था क्योंकि उसे पूरा-पूरा शक था कि मौलवी के वेश मे सुभाष चंद्र बोस उस डिब्बे में सफर कर रहे हैं। दो घण्टे बाद मुगलपुरा स्टेशन आ गया। इसके बाद लाहौर था, जहां स्टेशन पर दो सौ सशस्त्र पुलिस के जवान मौलवी साहब का इंतजार कर रहे थे लेकिन मौलवी साहब मुगलपुरा पर ही उतर पड़े। जनरंजन राय ने उन्हें रोकना चाहा लेकिन मौलवी साहब ने बडे प्यार से जवाब दिया, "मुगलपुरा और लाहौर में दूरी ही क्या है?"

जासूस का जाल छिन्न-भिन्न हो गया था लेकिन उसने हिम्मत न हारी। वह भी मुगलपुरा पर उतर कर मौलवी का पीछा करने लगा। मौलवी ने भी यह भाप लिया। वह फौरन स्टेशन के सामने के एक होटल में घुस गए। जासूस राय कुछ क्षणों तक होटल के बाहर उनका इंतजार करता रहा फिर उसने पास ही खडे एक सिपाही से थाने का पता पूछा। थोड़ी ही देर बाद सादे वेश मे पुलिस की एक टुकडी होटल के बाहर मौजूद थी। जासूस राय अभी अपनी अगली रणनीति निर्धारित ही

न कर पाए थे कि होटल से सिल्क का सूट पहने और कीमती फैल्ट हैट लगाए एक साहब निकला, जिसने जासूस द्वारा रोके जाने पर झिड़कने वाले स्वर में टूटी-फूटी लेकिन रूआबदार हिंदुस्तानी में बताया कि उसका नाम गाई मितरा है और वह पांडिचेरी में रहने वाला एक फ्रांसीसी है। इतना बताकर गुस्से में बड़बड़ाता हुआ वह फ्रांसीसी पास ही में खड़ी एक टैक्सी में बैठकर आंखों से ओझल हो गया।

उस समय तक सुभाष बोस के जीवित या मृत पकड़े जाने पर सरकार भारी इनाम की घोषणा कर चुकी थी। जासूस राय इस इनाम को जीतने के लिए कृत-संकल्प था। उसने लाहौर के सारे नाके बंद करवा दिए, फिर भी सुभाष बाबू का कोई सुराग न मिलने पर वह खुफिया पुलिस के साथ पेशावर पहुंचा। उसकी आंखें उसी पठान को तलाश कर रही थीं, जो उसे सुभाष बाबू के घर के सामने से गुजरते हुए आधी रात को दिखा था और जिसने अपनी बीवी के लिए दवा खरीदने का बहाना किया था। अचानक उसने एक देहाती पठान को देखा। उसके दिमाग में बिजली सी कौंधी और हाथ में रिवाल्वर लिए हुए वह खुफिया दल के साथ पठान पर झपटा। पठान फौरन एक गली में घुस गया और तेज दौड़ लगाई। खुफिया दल उसके पीछे-पीछे था। दौड़ते हुए पठान एक मैदान के दोनों ओर बने बंगलों की कतारों में से एक में घुस गया। यह एयरफोर्स के एक युवक फ्लाइंग अफसर बसंत कुमार का बंगला था। इस अफसर ने जासूस राय को डांट कर बंगले से बाहर निकाल दिया। इसके बाद वह बंगले के अहाते मे खड़े पेड़ों के एक झुरमुट के पास गया और धीरे से बोला—"महान आत्मा! अब आप बाहर निकल आइए। रास्ता साफ है। मैंने आपको झुरमुट मे छिपते देख लिया था।"

पठान धड़कते हृदय से झुरमुट से बाहर निकल आया और उसने पूछा—"तुम मुझे कैसे जानते हो?" उस फ्लाइंग अफसर ने जवाब दिया, "भला अपने जीवनदाता को कोई भूल सकता है? आप चाहे जिस वेश मे हो, मेरी आखें कभी गलती नहीं करेंगी। आपने ही तो बाढ़ में मेरे प्राण बचाए थे। क्या वह प्राण दान कभी भुलाया जा सकता है?"

पठान के वेश में सुभाष बाबू की स्मृति में एक पढ़ा-लिखा लेकिन आवारागर्द युवक घूम गया, जिसे बाढ़ में डूबने से बचाने का मौका उन्हें मिला था।

बाद में वायुसेना के इसी फ्लाइंग अफसर ने सुभाष बाबू को पठान के ही वेश मे एक काफिले में शामिल करवा कर काबुल पहुचा दिया।

☐ ☐ ☐

सुभाष चंद्र बोस के भाग निकलने की खबर का महत्व अंग्रेज सरकार की निगाह में इसलिए भी था क्योंकि उस समय द्वितीय विश्वयुद्ध के बादल दुनिया पर मंडरा रहे थे। सोवियत संघ ने पूंजीवादी देशो के षड्यंत्र को असफल करने के लिए हिटलर से अनाक्रमण संधि कर ली थी। ब्रिटेन को अपना पूरा अस्तित्व खतरे में लग रहा था। धुरी राष्ट्रों में से एक जापान ने 7 दिसम्बर सन् 1941 को पर्लहार्बर पर हमला

करके अचानक कब्जा कर लिया। 25 दिसम्बर तक पेनांग वेक आइलैण्ड और हांगकांग पर उसका कब्जा हो गया। ब्रिटिश सैनिक हर जगह से भाग रहे थे। 15 फरवरी, सन् 1942 तक सिंगापुर जापानियों के हाथों में था। हजारों सैनिक जापानियों के समक्ष आत्मसमर्पण कर रहे थे। इनमे से 32 हजार भारतीय सैनिक थे। 17 फरवरी, सन् 1942 को सिंगापुर के फेरज पार्क में पराजित भारतीय सैनिकों को मेजर फूजीवाड़ा ने कैप्टन मोहन सिंह के हवाले कर दिया। विश्व के सैनिक इतिहास में पहली बार युद्धबंदियो की फौज बनाने की घोषणा कैप्टन मोहन सिंह द्वारा की गई। इस फौज का नाम रखा गया—आजाद हिंद फौज।

9 व 10 मार्च को थाइलैण्ड और मलाया के भारतीयों के एक प्रतिनिधि सम्मेलन में रास बिहारी बोस द्वारा भेजा गया एक निमंत्रण पत्र पढ़ कर सुनाया गया। इसी के अनुसार 28, 29 व 30 मार्च, सन् 1942 को टोकियो में बोस की अध्यक्षता में जापान, चीन, मलाया और स्याम (थाईलैण्ड) के भारतीयों का सम्मेलन टोकियो में हुआ। जिसमें आजाद हिंद संघ की स्थापना हुई, जिसका लक्ष्य आजाद हिंद फौज द्वारा भारत की आजादी के लिए लड़ना था।

उधर सुभाष काबुल से रूस पहुंचे और वहां उन्होंने स्तालिन से भेंट करने की असफल कोशिश की। वहां के राजनीतिक वातावरण में रूस तथा जर्मनी के बीच होने वाली अनाक्रमण संधि के टूटने की संभावना थी। इसलिए वहां से कुछ आशा न रखकर सुभाष बाबू जर्मनी की ओर रवाना हो गए। वहां उन्होंने हिटलर से भेंट की। उन्हीं दिनों भारतीय सेना के दसवें ब्रिगेड के ऊपर, जो लीबिया मे लड़ रहा था, जर्मन विमानों ने बमों के बजाय पर्चे बरसाए, जिन पर सुभाष बाबू का संदेश लिखा हुआ था—"मैं जर्मनी पहुंच गया हूं। आपसे मुझे लम्बी कहानी कहनी है। यह हमारा युद्ध नहीं है। ब्रिटेन और जर्मनी आपस में लड़ें, इससे हमें क्या मतलब। कृपया आप लड़ाई बंद करें।"

इस पर्चे के जादुई असर के फलस्वरूप भारतीय सैनिकों ने लड़ाई बंद कर दी और हथियार डाल दिए। ड्रेस्डन में इन्हीं सैनिकों के साथ उन्होंने आजाद हिंद फौज बनाई और ड्रेस्डन को ही प्रधान कार्यालय घोषित किया। 26 अप्रैल को उन्होंने बर्लिन रेडियो से अपना संदेश प्रसारित किया। सुभाष बाबू 'नेताजी' कहलाए। ड्रेस्डन मे मुख्यालय पर तिरंगा झण्डा लहराया गया। उनका संदेश सुनकर मलाया तथा जापान के भारतीयों ने उन्हें अपने यहां आने के लिए निमंत्रण दिया। यूरोप से जापान तक उन्होंने खतरो से भरे समद्र मे पनडुब्बी से लम्बी यात्रा की। 15 जून को पूर्वी एशिया के 8 देशों के सौ भारतीय प्रतिनिधियों ने एक सप्ताह तक बैंकाक में सम्मेलन करके आजाद हिंद फौज को मान्यता दी तथा उसका ध्येय 'विश्वास, एकता और बलिदान' घोषित किया गया। सम्मेलन ने तय किया कि भारत में जब क्रांतिकारी आंदोलन छिड़ेगा, उसी समय ब्रिटिश उपनिवेशों पर हमला किया जाएगा। जापान से अनुरोध किया गया कि ब्रिटिश साम्राज्य का पतन होते ही

भारतीयों की सार्वभौमिकता स्वीकार की जाए और भारतीयों को शत्रु की प्रजा न समझा जाए।

29 जून, सन् 1943 को टोकियो रेडियो से सुभाष बाबू का 'तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूंगा' का प्रसिद्ध सदेश प्रसारित हुआ। 4 जुलाई को सिंगापुर में भारतीय सम्मेलन में आजाद हिंद फौज ने 'जय हिंद' के गगनभेदी स्वर में अपने सर्वोच्च सेनापति का स्वागत किया। 9 जुलाई को म्यूनिसिपल पार्क में एक लाख से ऊपर की विशाल रैली हुई। जिसमें नेता जी ने महिलाओं की रानी झांसी ब्रिगेड बनाने की इच्छा प्रगट की। 1 अगस्त, सन् 1943 तक केवल मलाया में आजाद हिंद संघ की 60 शाखाएं बन गईं और सदस्यता 1 लाख 70 हजार तक हो गई। रानी झांसी ब्रिगेड के लिए महिलाओ का प्रशिक्षण प्रारम्भ हो गया था। 15 अगस्त को सिंगापुर में 30 हजार लोगो की आम सभा में नेताजी ने आजाद हिंद फौज व सरकार का कार्यालय क्रमशः बर्मा व रंगून ले जाने की घोषणा की। 25 अगस्त को उन्होंने फौज का नेतृत्व अपने हाथ में लेकर सैनिकों को ''दिल्ली में वायसराय के भवन पर राष्ट्रीय झण्डा फहराने'' के लिए ललकारा। 26 सितम्बर को उन्होंने अंतिम मुगल बादशाह और 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के नेता बहादुरशाह जफर के मकबरे पर श्रद्धांजलि अर्पित की। 29 अक्तूबर को सिंगापुर में पूर्वी एशिया के भारतीयो के सम्मेलन में 'अस्थाई आजाद हिंद' सरकार की स्थापना की गई। 21 नवम्बर को जापानी आधिपत्य के शंघाई नगर में नेता जी गए। वहां के भारतीय ने अपनी सारी सम्पत्ति उन्हें अर्पित कर दी।

□ □ □

नेताजी को आधुनिक युद्ध नीति, विश्वयुद्ध की परिस्थितियों तथा मलाया के भूगोल इत्यादि के बारे में आश्चर्यजनक जानकारी थी। सन् 1943 के अंत में नेताजी के बगल में खड़े होकर जापान के प्रधानमंत्री जनरल तोजो ने डेढ़ घण्टे तक आजाद हिंद फौज की सलामी ली। जनवरी, सन् 1944 में फौज ने अपना आक्रमणात्मक अभियान शुरू किया। 18 मार्च को पहली बार भारतीय सैनिकों ने बर्मा की सीमा पार करके कोठिया पर अधिकार कर लिया। आजाद हिंद फौज के जनरल शाहनवाज को नेताजी ने बधाई दी। अप्रैल में आजाद हिंद बैंक की स्थापना हुई, जिसमें धनी और सम्पन्न भारतीयो ने अपनी पूंजी लगा दी। 5 जुलाई, 1944 को रंगून मे नेताजी को सोने, चांदी, व जवाहरात से तौला गया। एक मुसलमान ने 1 करोड़ रुपये का दान दिया।

तभी वर्षा का मौसम आ गया। नेताजी ने अग्रिम आक्रमण की योजना और तैयारी के लिए युद्ध स्थगित करने की घोषणा की।

□ □ □

इसके बाद का इतिहास तत्कालीन विश्व राजनीति के अंदर फासिस्टों की पराजय का इतिहास है। स्तालिनग्राद के मोर्चे पर लाल फौज ने जबर्दस्त मोर्चा लेकर

हिटलर को पराजित कर दिया। मार्शल जुकोव के नेतृत्व में लाल फौज वर्लिन की ओर बढ़ गई। टीटो के नेतृत्व में युगोस्लाविया से नाजियों को खदेड़ दिया गया। जापान की भी पराजय होने लगी। उसने आजाद हिंद फौज को मदद देना बंद कर दिया। नेताजी का स्वास्थ्य गिरने लगा। वे सैनिकों के साथ रणक्षेत्र में रहना चाहते थे लेकिन उन्हें बैंकाक जाना पड़ा। 5 व 8 अगस्त, सन् 1945 को हिरोशिमा व नागासाकी पर परमाणु बम गिराकर अमेरिका ने पर्ल हारबर का बदला ले लिया। जापान ने भी आत्मसमर्पण कर दिया। नेताजी, सम्राट हिरोहितो से मिलने के लिए टोकियो जाने हेतु एक विशेष विमान में बैठे लेकिन उनका विमान रास्ते में ही दुर्घटनाग्रस्त हो गया।

23 अगस्त, सन् 1945 को भारतीय देशभक्तों के ऊपर वज्रपात की तरह टोकियो रेडियो से प्रसारित यह खबर गिरी "आजाद हिंद की अस्थाई सरकार के सर्वोच्च अधिकारी सुभाष चंद्र बोस का अपने सहायक कर्नल हबीबुर्रहमान के साथ बैंकाक से टोकियो जाते समय फारमोसा के समीप ताईहोकू नामक स्थान पर विमान दुर्घटना में निधन हो गया।"

नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने फासिस्ट धुरी राष्ट्रों की मदद से भारत को आजाद कराने की योजना बनाई थी लेकिन वह उसमें सफल न हो सके। विश्व मानवता के हित में धुरी राष्ट्रों की पराजय आवश्यक थी। उनकी पराजय के साथ ही आजाद हिंद फौज की अग्रगति समाप्त हो गई लेकिन आजादी की जो लगन और इसके लिए सर्वस्व समर्पित करने की जो उत्कट अभिलाषा उनके मन में थी, उसमें उन्हें भारतीय जनता के वीर नायक के रूप में अमर प्रतिष्ठा प्रदान की।

● ●

दुनिया के सबसे बड़े हत्यारे की तलाश

हिटलर की नाजी पार्टी का जल्लाद एडोल्फ आइखमैन।

दुनिया का सबसे बड़ा हत्यारा, जिसने 60 लाख यहूदियों को मौत के घाट उतार दिया। नस्लवाद में लिपटी दरिंदगी का क्रूरतम खलनायक। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद मित्र राष्ट्रों की फौजें आइखमैन को उसके अमानवीय कुकर्मों की सजा नहीं दे पाईं। यहूदियों के राष्ट्र इजरायल की स्थापना होने के बाद यह बीड़ा उठाया गंजे जासूस फ्रीडमन, उसके साथ मानोस व अन्य जासूसों की एक टोली ने। उन्होंने यहूदियों को जड़मूल से समाप्त करने की कोशिश करने वाले आइखमैन की तलाश में दुनिया का चप्पा-चप्पा छान मारा।

क्या वे आइखमैन को पकड़ सके? क्या आइखमैन की मौत की खबर वास्तव में झूठी थी? दुनिया की सबसे बड़ी तलाश! दुनिया का सबसे बड़ा जासूसी कारनामा!

19

द्वितीय विश्वयुद्ध के तुरंत बाद विजयी मित्र राष्ट्रों की फौजों द्वारा हिटलर और उसके साथियों की तलाश शुरू हुई। उसका मुख्य सेनाध्यक्ष रिबेनट्राय बर्लिन के एक होटल से गिरफ्तार किया गया। हिमलर को फांसी दे दी गई। मार्शल गोयरिंग ने ज़हर खाकर आत्महत्या कर ली। दुनिया का सबसे बड़ा झूठा नाजी प्रचारमंत्री गोयबल्स हिटलर के साथ ही उसके बंकर में जल मरा। हजारों अन्य नाजी पकड़े गए। उन पर न्यूरेम्बर्ग में मुकद्दमे चले। उन्हें फांसी से लेकर कैद तक की कड़ी से कड़ी सजाएं मिलीं लेकिन कुख्यात नाजी हत्यारे एडोल्फ आइखमैन का कहीं पता नहीं चला। आइखमैन, जिसने 60 लाख यहूदियों को गैस की भट्टी में झोंक दिया था। हिटलर के नस्लवाद और यहूदी-विरोध को मूर्तरूप देने वाला आइखमैन, मित्र राष्ट्रों की आंखों में धूल झोंककर चुपचाप फरार हो चुका था। यही आइखमैन विश्व भर की पुलिस को चकमा देकर कई वर्ष तक किसी के हाथ नहीं आया, जिससे धीरे-धीरे उसे तलाश करने की उत्सुकता समाप्त होती गई। यहां तक कि उसे मृत तक मान लिया गया। एक व्यक्ति ऐसा भी था, जो यह मानने के लिए तैयार न था कि नाजी हत्यारा आइखमैन मर चुका है। आइखमैन की मौत के जितने भी सबूत मिले थे, उन पर उसे यकीन न था। यह था इजरायली जासूस फ्रीदमन, जिसे इजरायल के निर्माण के पश्चात् नवगठित खुफिया विभाग के चीफ ने एक जिम्मेदारी सौंपते हुए कहा था—"आज से आपका सिर्फ एक काम रह जाता है, एडोल्फ आइखमैन को कहीं से भी खोज निकालना। वह अभी मरा नहीं है। वह कहीं छिपा बैठा है। वह एक युद्ध अपराधी है। वह हमारे भाइयों का हत्यारा है। हम आइखमैन को अपने सामने देखना चाहते हैं।"

फ्रीदमन पोलैण्ड के एक नाजी यातना-शिविर में रहकर स्वयं उन अमानवीय परिस्थितियों को भोग चुका था, जो जर्मन नस्लवाद ने उसकी कौम के लिए पैदा की थीं। उसके सिर के बाल इसी शिविर की यातनाओं के कारण उसका साथ छोड चुके थे। यह जानता था कि आइखमैन को तलाश करना कोई आसान काम नहीं है क्योंकि उसके पास इस नाजी जल्लाद की न तो कोई तस्वीर उपलब्ध थी और न ही कोई अन्य पहचान। फिर भी उसने इस जिम्मेदारी को स्वीकार कर लिया। और इस तरह शुरू हुई दुनिया के इतिहास की सबसे बड़ी खोज! यह एक राष्ट्र द्वारा ऐसे अपराधी की खोज थी, जिसने धरती पर किए जा सकने वाले जघन्यतम अपराध किए थे।

□ □ □
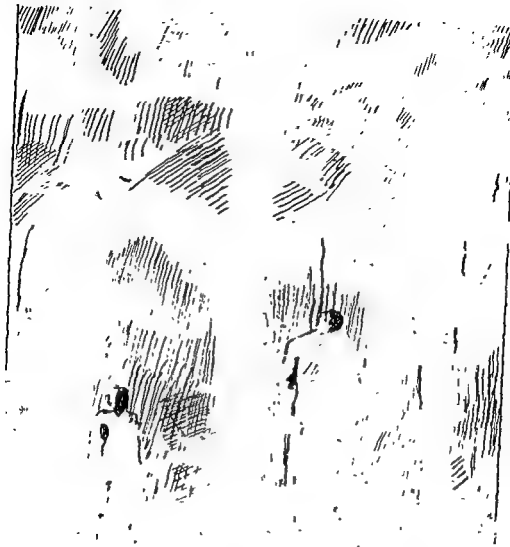
आइखमैन की तलाश करने के लिए सबसे पहले फ्रीदमन ने इजराइल तथा उसके बाहर बने तमाम शरणार्थी शिविरों के चक्कर लगाने शुरू किए। इन्हीं शिविरों में लाखो यहूदी नाजी यातनाओ के शिकार हुए थे। उसने काफी लोगो से भेंट की लेकिन परिणाम अधिक आशाजनक नहीं निकले। उसे केवल इतना पता चला कि आइखमैन का व्यक्तित्व इस कदर मामूली है कि भीड़ में उसे पहचानना लगभग नामुमकिन ही है। दरअसल, आइखमैन ने नाजी सिद्धांत के अनुसार कभी किसी यहूदी से दोस्ती ही नहीं की थी। हर यहूदी के लिए वह अमानवीयता और मृत्यु की काली परछाईं मात्र था।

फ्रीदमन ने इसके बाद फ्रांस, ब्रिटेन व अमेरिकी खुफिया विभाग के दरवाजे खटखटाए। नाजी विरोधी गुप्त संगठनों के सदस्यो से संपर्क किए। अनेक देशों के पुलिस अधिकारियों से मुलाकातें कीं।

सी.आई.ए. से उसे कुछ काम की बातें मालूम हुईं। सी.आई.ए. का ख्याल था कि आइखमैन भी जर्मन युद्धबंदियों की भीड में घुस गया होगा और वहा उसने जरूर अपने नाम, पेशे तथा पिछली जिंदगी के बारे में झूठ बोला होगा। यह कहकर वह साफ बच निकला होगा कि वह गलत ढंग से देशभक्ति का शिकार बन गया था और उसे यातना-शिविरो व गैस-चैम्बरों के बारे में कुछ भी मालूम नहीं है। यह भी संभावना थी कि युद्धबंदियो के लिए बनी अस्थाई जेलों से आइखमैन सन् 1946 में भाग भी निकला हो।

फ्रीदमन को इन संभावनाओं के अलावा एक सूचना यह भी मिली कि आइखमैन की पत्नी का आस्ट्रिया में आना-जाना होता रहता है। इजरायली जासूसों ने फौरन उस व्यक्ति का पता लगा लिया, जिसके पास आइखमैन की पत्नी आती-जाती थी। उसे गिरफ्तार करके बिना मुकद्दमा चलाए गोली मार दी गई। बाद मे मालूम पड़ा कि वह एक छुपा हुआ साधारण नाजी था, न कि आइखमैन।

उधर फ्रीदमन युद्ध-समाप्ति के बाद जब्त की गई हजारों फाइलो में अपना सिर खपा रहा था। अचानक उसे एक फाइल मिली, जिसमें एक अर्जी थी। जिसके नीचे आइखमैन के दस्तखत थे और जिसमें लीबेल नामक 'शुद्ध आर्य रक्त' वाली एक औरत, जो किसी भी नाजी तूफानी दस्ते (एस. एस.) के लिए वरदान साबित हो सकती थी, से शादी करने की इजाजत मांगी गई थी। इस अर्जी पर तारीख थी—30 अक्तूबर, सन् 1934 तथा 17 मई, सन् 1935 को दोनों का विवाह सम्पन्न हुआ था लेकिन फ्रीदमन को लीबेल का सही पता-ठिकाना न मिल सका। इसी बीच चेकोस्लोवाकिया की पुलिस ने आइखमैन के एक पुराने साथी को गिरफ्तार करके उसे सूचना भेजी। गिरफ्तारशुदा नाजी बड़ा बातूनी निकला। उसने आइखमैन की एक प्रेमिका के बारे मे सूचना दी, जो किसी समय दोप्ल मे एक कारखाने की मालकिन हुआ करती थी।

फ्रीदमन का एक साथी दोप्ल पहुंचा। मानोस नाम का यह यहूदी जासूस आकर्षक व्यक्तित्व का धनी था व फर्राटे के साथ कई भाषाएं बोल लेता था। उसने पता लगाया कि आइखमैन की विधवा प्रेमिका बादआउजे नामक जगह पर छुट्टियां बिताने गई हुई है। मानोस फौरन बादआउजे पहुचा और नाजी अफसरों की विधवाओं से गहरी सहानुभूति दर्शाने वाले एक व्यक्ति के रूप मे एक होटल मे छद्म नाम से रहने लगा। उस समय मानोस की प्रसन्नता की सीमा न रही जब उसे पता चला कि जिस औरत को उसने अपने झांसे में फंसाया है, वह आइखमैन की प्रेमिका नहीं, वरन् उसकी पत्नी है। असल में मानोस ने श्रीमती आइखमैन की विधवा मित्र को पटाया तथा उसके माध्यम से आइखमैन की बीबी तक पहुंचा। धीरे-धीरे उसने उनके घरेलू मामलों में भी हस्तक्षेप करना शुरू कर दिया। उसने एक महिला जासूस को वहां नौकरानी के रूप मे रखवा दिया। मानोस वहां जाता और बड़े-बड़े नाजी नेताओं के बारे में चर्चाएं करता लेकिन आइखमैन का नाम आते ही श्रीमती लीबेल सहम जातीं। लीबेल के तीन बच्चे थे, उनसे भी मानोस की खासी मित्रता हो गई लेकिन वह उनसे भी कोई कारगर सूचना पाने में नाकामयाब रहा। धीरे-धीरे मानोस को पता चल गया कि लीबेल को अपने पति के छुपने के स्थान के बारे में स्वयं भी पता नहीं है।

अब मानोस ने दोप्ल लौट कर फिर आइखमैन की प्रेमिका को खोजना प्रारंभ किया। आइखमैन की प्रेमिका का नाम श्रीमती मिस्तेलबाख था, जो एक सुंदर और [illegible] औरत थी। मानोस ने उसे भी झांसा दिया कि वह आइखमैन के एक निकटतम मित्र का भाई है। उस मित्र के पास आइखमैन का बहुत-सा धन और ढेर सारी कीमती चीजें रखी हुई हैं। मानोस ने उस महिला से पूछा कि वे चीजें आइखमैन तक कैसे पहुंचाई जाएं? मिस्तेलबाख ने उसे आइखमैन के बारे में कुछ नहीं बताया—लेकिन यह संकेत जरूर दिया कि उस नाजी जल्लाद का पिता आस्ट्रिया में रहता है। स्वाभाविक ही था कि मानोस आस्ट्रिया पहुंचता. लेकिन आइखमैन के बूढ़े पिता ने उसका प्रश्न सुनते ही उसे घर से निकल जाने के लिए कहा। वह बूढा चीख कर बोला, "निकल जाओ यहां से। मेरा अपने बेटे से कोई संबंध नहीं है।"

मानोस फिर दोप्ल लौट आया। एक दिन वह और श्रीमती मिस्तेलबाख एक खुले रेस्तरां में पेड़ के नीचे बियर पी रहे थे। साथ-साथ में मिस्तेलबाख का एलबम भी देखा जा रहा था। अचानक उसने एक तस्वीर पर उंगली रखते हुए कहा, "यह रही मेरे उस पुराने दोस्त और आपके भाई के परम मित्र की तस्वीर। यही है एडोल्फ.।" मानोस आइखमैन की उस एकमात्र तस्वीर को देर तक घूरता रहा।

उसी रात स्थानीय पुलिस ने जाली राशन कार्डों की जांच के बहाने मिस्तेलबाख के घर की तलाशी ली। यह कार्यवाही मानोस के इशारे पर हुई थी। तलाशी के दौरान मिस्तेलबाख के एलबम से वह तस्वीर चुपचाप निकाल ली गई। यह थी नाजी हत्यारे की कानूनी पहचान।

□ □ □

इसके बाद की खोज भी कुछ कम कठिन नहीं थी। उत्तरी जर्मनी के एक जंगल मे आइखमैन ने लकड़ियों के ईमानदार ठेकेदार की ख्याति प्राप्त कर ली थी। मजदूर उसकी प्रशंसा करते थे, क्योंकि वह उनका राशन उन्हें ईमानदारी से देता था। वहां लकड़ियों का यह ठेकेदार बिलकुल अकेला रहता था। कभी-कभी एक औरत उससे मिलने आती थी। उस ठेकेदार का कहना था कि उसके परिवार के सभी लोग युद्ध में मारे जा चुके हैं और वह भी ज्यादा दिन जिंदा नहीं रहना चाहता।

असलियत यह थी कि लाखों यहूदियों की जान लेने वाले इस व्यक्ति के मन में जिंदा रहने की बड़ी उत्कट अभिलाषा थी। लकड़ी के व्यापारी का दिवाला निकल जाने के कारण आइखमैन दो पूर्व नाजियो के साथ इटली पहुंचा। इटली से जिनेवा और जिनेवा से सीरिया। जिनेवा में उसने एक ईसाई मठ में कुछ दिन काम किया। उसका उद्देश्य वेटिकन पासपोर्ट अर्जित करना था। उसे रिकार्डो क्लीमेण्ट के नाम से पासपोर्ट मिल गया। इसी की मदद से यह सीरिया पहुंच पाया, जहां ब्रूनर नामक एक कट्टर व पूर्व नाजी के यहां उसे नौकरी मिल गई। 1949 तक आइखमैन को अपनी चिरपरिचित यहूदी विरोध की खुराक मिलती रही क्योंकि ब्रूनर भी यहूदियों से उतनी ही घृणा करता था। इस बीच दुनिया भर के अखबार हिटलर की प्रेमिका, बोरमन तथा आइखमैन के बारे में मनगढंत खबरें छापते रहे।

दुनिया में धीरे-धीरे ही सही लेकिन बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे। इजराइल की औपचारिक रूप से स्थापना हो चुकी थी। मध्यपूर्व की उथल-पुथल ने आइखमैन को पुनः बेरोजगार कर दिया। वह पुनः पुराने दोस्तों की तलाश में स्पेन पहुंचा। वहां उसे कोई नहीं मिला। उसकी जिनेवा वापसी हुई। वहां वह 14 जून सन् 1950 को अर्जेण्टाइना के लिए पासपोर्ट और वीसा बनवाने में सफल हो गया। आइखमैन समुद्र के रास्ते से अर्जेण्टाइना पहुंचा। इसी दौरान उसकी बीबी लीवेल ने एक हलफनामा देकर यह घोषणा कर दी कि उसके पति को विश्वयुद्ध की समाप्ति पर उसकी बहन व दो अन्य व्यक्तियों ने चेकोस्लोवाकिया की पार्टीजन सैनिक टुकड़ियो के हाथों मरते देखा था। इस हलफनामे का असर इजरायल तक हुआ और इजरायली सरकार ने आइखमैन को मरा हुआ मान कर फ्रीदमन, मानोस व उनके साथियों को उत्साहित करना बंद कर दिया लेकिन फ्रीदमन को अभी भी यकीन था कि नाजी जल्लाद जिंदा है।

अंतर्राष्ट्रीय शीत-युद्ध तथा जासूसी की दुनिया में सावधानी और सतर्कता के ढीले होते ही मौत का शिकंजा अपने शिकार को धर दबोचता है। अपनी बीबी के हलफनामे के असर को आइखमैन ने भी महसूस किया और उसने अपने बिछुड़े हुए परिवार के साथ बाकी जीवन शांतिपूर्वक बिताने का फैसला कर लिया। संभवतः यही उसकी पहली गलती थी।

अचानक एक दिन श्रीमती लीवेल के पास एक हवाई पत्र पहुंचा जो चाचा रिकार्डो, तुकामन सूबा, अर्जेण्टाइना की ओर से भेजा गया था। लीवेल ने ... ने

भी यही बताया कि चाचा रिकार्डो ने उन्हें दक्षिण अमेरिका आने का न्यौता दिया है, जहां वे कापरी कम्पनी में इंजीनियर हैं। कुछ ही दिनों बाद लीबेल का परिवार पासपोर्ट बनाकर यूरोप से रवाना हो गया। उनकी यात्रा का पता किसी को न था—न इजराइलियों को और न ही किसी अन्य देश की गुप्तचर पुलिस को। सन् 1952 के एक दिन अर्जेण्टाइना के देहाती स्टेशन पर मजदूरों के कपड़ों में एक व्यक्ति ने लीबेल परिवार का स्वागत किया। आइखमैन 7 वर्ष बाद अपने परिवार से मिल रहा था। बच्चो को उसका असली परिचय नहीं बताया गया। वे उसे चाचा रिकार्डो ही समझते रहे।

आइखमैन की दूसरी गलती थी—उसके परिवार के नामों की विलक्षणता। क्लीमेण्ट एक फ्रांसीसी नाम था, जिससे लोग आइखमैन को जानते थे। लीबेल का पूरा नाम वेरोनिका लीबेल था, जो कुछ-कुछ इतालवी लगता था। बच्चों के नाम शुद्ध जर्मन थे—क्लाउस, होर्स्त व डीटर।

आइखमैन परिवार के दिन हंसी-खुशी गुजरने लगे। कापरी कम्पनी उसे अच्छी तनख्वाह देती थी लेकिन उन 60 लाख यहूदियों की आह भी आइखमैन का पीछा कर रही थी, जो उसकी वजह से अकाल मृत्यु के ग्रास बने थे। कापरी बांध पूरा हो गया। नाजी जल्लाद फिर बेरोजगार हो चुका था। धीरे-धीरे सारा पैसा चुक गया। उसे ब्राजील जाना पड़ा। वहां वह एक फार्म पर काम करता रहा। 1956 में वह पुनः अर्जेण्टाइना लौटा। उसने अरब मे सेना में भर्ती होना चाहा पर असफलता मिली। उसका दुर्भाग्य उसे बार-बार अर्जेण्टाइना लौटने के लिए मजबूर कर रहा था।

सन् 1959 में फ्रीदमन को जर्मनी के एक वकील का पत्र मिला, जिसमें आइखमैन के कुवैत मे होने की सूचना थी। फ्रीदमन ने फौरन सरकार से चार सहायकों व कुछ धन की मांग की लेकिन उसका अनुरोध ठुकरा दिया गया। फ्रीदमन ने वह पत्र इजरायल के एक प्रमुख अखबार मे छपवा दिया। ज्यो ही आम जनता को यह खबर मिली, फ्रीदमन की माग के समर्थन मे जन दबाव सरकार पर पड़ने लगा। विवश होकर प्रधानमंत्री बेन गुड़रेन को हरी झण्डी दिखानी पडी। फ्रीदमन एक बार फिर अपने जीवन के सबसे बड़े मिशन पर लग गया।

अप्रैल, सन् 1960 में आइखमैन की बीवी की गलती से इजराइलियों को उसका सुराग मिल गया। हुआ यह कि लीबेल ने आस्ट्रिया लौटकर अपने पासपोर्ट का नवीकरण कराया। पासपोर्ट क्लर्क ने लीबेल का नाम पहचान कर मुखबरी कर दी। इजराइली जासूसों ने लीबेल का अर्जेण्टाइना तक पीछा किया और वे आइखमैन के घर तक पहुंच गए। उसके घर के सामने दिन-रात निगरानी रहने लगी।

इसी बीच अर्जेण्टाइना की आजादी की 150वी सालगिरह के अवसर पर इजराइल और अर्जेण्टाइना में हवाई संबंध जुड़े। एक बड़ा यहूदी प्रतिनिधिमण्डल ब्यूनस आयर्स आया।

फ्रीदमन ने यह मौका हाथ से निकलने देना उचित नहीं समझा। चार इजराइली जासूसों ने एक शाम काम से लौटते समय आइखमैन को दबोचकर एक गाड़ी में बैठा लिया। उसे नौ दिन तक एक कमरे में बंद रखा गया। दसवें दिन एक इजराइली जहाज उसे तेल अबीब उड़ा ले गया। संयुक्त राष्ट्र संघ में इजराइली प्रतिनिधि श्रीमती गोल्डा मायर ने अर्जेण्टाइना से माफी मांग ली और कहा कि इस मामले में नैतिक कानून इजरायल के पक्ष में है।

यहूदियों की अदालत ने आइखमैन को मौत की सजा दी। फांसी के तख्ते पर आइखमैन ने नाजी दर्शन और पूर्ण युद्ध मे अपने विश्वास को दोहराया। डेविड की कब्र के पास इजरायल में आइखमैन के नृशंस कारनामों के प्रतीक चिह्न एक संग्रहालय में रखे हुए हैं। इनमें आदमी की चर्बी से बना हुआ साबुन तथा मनुष्य की हड्डियों से बनी मूर्तियां हैं। ये प्रतीक चिह्न पूर्ण युद्ध और नस्लवाद के दर्शन से उपजे कुपरिणामों की नई पीढ़ी को याद दिलाते रहेंगे।

●●

दुनिया को बचाने वाला जासूस

दूसरे महायुद्ध में सोवियत संघ पर नाजी जर्मनी के हमले के दौरान, अगर रिचर्ड सोर्गी ने स्तालिन को यह सूचना न दी होती कि जापानी रूस के पूर्वी मोर्चे पर हमला नहीं करेंगे, तो निश्चित रूप से हिटलर के दबाव के सामने सोवियत शक्ति को टूट जाना पड़ता। सोर्गी की जासूसी की बदौलत ही स्तालिन ने पूर्वी मोर्चे से फौज हटाकर स्तालिनग्राद के मोर्चे पर लगा दी और इसके बाद लाल फौज ने नाजियों के सपनों को चकनाचूर कर दिया।

सोर्गी धन या ऐशो-आराम के लिए नहीं वरन् एक विचारधारा और देशभक्ति के लिए जासूसी करता था। उसकी सूझबूझ और चतुराई ने एक साथ जर्मनों और जापानियों को बेवकूफ बनाया। उसने सोवियत संघ को ऐसी-ऐसी सूचनाएं दीं, जिनका मूल्य नहीं आंका जा सकता।

20
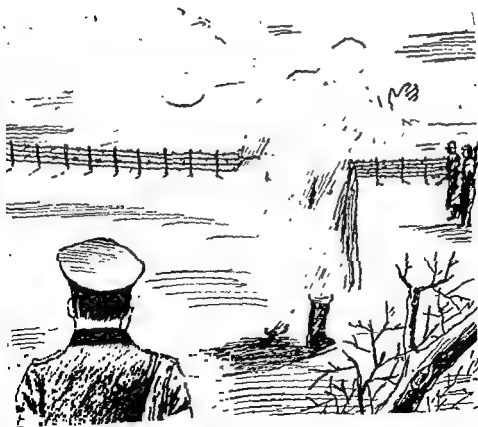
द्वितीय विश्वयुद्ध अपनी पूरी भयानकता के साथ जारी था। नाजीवाद के विश्व साम्राज्य का सपना देखने वाली जर्मन फौजें जापान व इटली की मदद से पूरी दुनिया को आपस में बांट कर जीत लेना चाहती थीं। विश्व भर में फैले हुए युद्ध के कई मोर्चों में सबसे महत्वपूर्ण मोर्चा था—स्तालिनग्राद का। सोवियत संघ की जनता और फौजें अभी तक हर मोर्चा जीतने वाली जर्मन फौजों से प्राणपण से जूझ रही थीं।

अचानक सोवियत कम्युनिस्ट नेता मार्शल स्तालिन को कहीं से सूचना मिली कि जापान रूस पर हमला नहीं करेगा, क्योंकि उसे थाइलैण्ड और मलाया में जीत हासिल करने के लिए 3 लाख सैनिकों की तथा हिन्दचीन में आगे बढ़ने के लिए 40 हजार सैनिकों की आवश्यकता है। कुल मिलाकर दक्षिण एशिया में जापान को अपने 10 लाख सैनिकों का ज्यादातर हिस्सा झोंक देना था।

यह सूचना बेहद विश्वस्त थी। स्तालिन ने तुरंत सोचा कि अब साइबेरिया सीमा पर जापानी खतरे के कारण लगी हुई रूस की लाल फौज को स्तालिनग्राद के पश्चिमी मोर्चे पर लगा दिया जाए। इससे कम्युनिस्टों की सैनिक शक्ति दोगुनी हो गई और हिटलर की पराजय का सिलसिला शुरू हो गया।

स्तालिन को मिलने वाली इस सूचना ने द्वितीय विश्वयुद्ध की संपूर्ण धारा को ही मोड़ दिया। आखिर वह कौन-सा स्रोत था, जिसने स्तालिन को यह महत्वपूर्ण खबर देकर एक तरह से पूरे विश्व को ही नाजी खतरे से बचा लिया?

इस प्रश्न के उत्तर में छिपी है—डा. रिचर्ड सोर्गी की कहानी, जिसका नाम द्वितीय विश्वयुद्ध की जासूसी गाथाओं और नायकों की सूची में सबसे ऊपर लिखा जाता है।

□ □ □

सोर्गी का जन्म बाकू (रूस) में हुआ था। उसका पिता जर्मन था और मां रूसी थी। बड़े होकर उसने जर्मन भाषा में पत्रकारिता का पेशा अपनाया। सोर्गी कई भाषाएं धाराप्रवाह बोल लेता था। उसके व्यक्तित्व में भी मिलते ही किसी को भी प्रभावित कर लेने का अद्भुत गुण विद्यमान था। इतिहास के इस विलक्षण विद्वान की विशेषता यह थी कि पूर्वी एशिया के बारे में उसे बारीक से बारीक जानकारियां थीं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि सोर्गी इस क्षेत्र की आत्मा की गहराइयों में पैठा हुआ था।

लम्बा कद, नीली आंखें, स्वच्छ मुस्कराहट, दूरदर्शी मानसिकता, विश्लेषण क्षमता व कम्युनिज्म के साथ वफादारी के गुणों ने मिलकर सोर्गी को सोवियत संघ के लिए एक अत्यंत उपयोगी जासूस के रूप में बदल दिया था। सोर्गी ने ही सबसे पहले स्तालिन को सूचना दी थी कि पर्ल हारबर पर जापानी कब हमला करेंगे। इससे स्तालिन को अपनी युद्ध रणनीति निर्धारित करने मे मदद मिली। इसी हमले के बाद ही अमेरिका को भी अपनी तटस्थता की नीति त्याग कर युद्ध के मैदान में कूदना पड़ा। स्तालिन ने इस सूचना से अमेरिका को वंचित रखा और पर्ल हारबर पर हुए हमले का बदला लेने के लिए अमेरिकी राष्ट्रीयता की भावना भड़क उठी।

बचपन में ही सोर्गी के माता-पिता बर्लिन चले गए थे। सोर्गी की पढ़ाई जर्मन स्कूलों में हुई। उसके चाचा एडोल्फ सोर्गी महान् क्रांतिकारी विचारक कार्ल मार्क्स के सचिव थे। सोर्गी पर अपने चाचा का काफी प्रभाव पड़ा। इस प्रभाव ने उसे कम्युनिज्म का एक कट्टर समर्थक बनने में मदद की।

प्रथम विश्वयुद्ध में सोर्गी फौज मे भर्ती हुआ और लड़ाई में दो बार घायल हुआ। दूसरी बार अस्पताल के बिस्तर पर पड़े-पडे उसमे पढ़ने की भूख जागी। उसने हैम्बुर्ग और बर्लिन विश्वविद्यालयों में अध्ययन करके सन् 1920 में राजनीतिशास्त्र में डॉक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। सोर्गी ने कुछ दिन अध्यापन कार्य किया और इसके बाद कोयला खान में काम करना शुरू किया। इस पूरे दौर में उसके समय का अधिकांश हिस्सा कार्ल मार्क्स के विचारों के प्रचार-प्रसार में लगा। सन् 1922 से उसने समाचारपत्रों में लेखन कार्य भी करना शुरू कर दिया। अक्तूबर, सन् 1919 में स्थापित हुई जर्मनी कम्युनिस्ट पार्टी की हैम्बुर्ग शाखा का सोर्गी शुरू से ही सदस्य था। सोर्गी को जापान में रहने का भी मौका मिला। उसने अब तक विश्व की कई भाषाएं सीख ली थीं। फ्रांसीसी, रूसी, चीनी, जापानी, जर्मन इत्यादि भाषाएं वह फर्राटे से बोल लेता था।

सोर्गी की योग्यता और काम से प्रभावित होकर सोवियत नेताओं ने उसे मास्को बुला लिया। वह कोमिण्टर्न यानी कम्युनिस्टों के अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में काम करने लगा। कहा जाता है कि सोर्गी को कोमिण्टर्न तक पहुंचाने में स्तालिन के अभिन्न साथी मोलोतोव का जबर्दस्त हाथ था।

तीन वर्ष तक कोमिण्टर्न मे काम करने के उपरांत सन् 1927 में सोर्गी सक्रिय जासूसी के क्षेत्र में उतरा। उसने आवरण के रूप में जर्मनी पत्रकार का बाना पहना। वह इसी रूप मे दो वर्ष तक स्कैण्डेविनियन देशों में घूमता रहा। सोर्गी ने इस दौरान ब्रिटेन का चक्कर भी लगाया। सन् 1930 में उसे चीन भेज दिया गया। यह वह इलाका था, जहां उसे अपनी जिंदगी का सबसे महत्वपूर्ण कारनामा अंजाम देना था।

□ □ □

सोर्गी ने शंघाई में अपना दफ्तर खोला तथा वहां से ह्वांग हो, नानकिन, कैण्टन,

बीजिंग और मंचूरिया का दौरा करने लगा। उसने जापान और चीन के इतिहास व संस्कृति का अध्ययन करके स्वयं को शीघ्र ही एशिया की समस्याओं के विशेषज्ञ के रूप में स्थापित कर लिया। इस दौर में उसने अपने दो सहायक बनाए, जो अंत तक उसके लिए काम करते रहे। इनमें एक थी चीन में बीस वर्ष से पत्रकारिता कर रही जर्मन महिला अगनेस स्मडले तथा दूसरा था चीनी राजनीति का विशेषज्ञ जापानी पत्रकार होजुमी। होजुमी के लेख इंग्लैण्ड और जापान दोनों जगह छपते थे और सम्मान से पढ़े जाते थे। वह 'पैसिफिक रिलेशंस इंस्टीट्यूट' का स्थाई प्रतिनिधि भी था। जुलाई सन् 1938 में होजुमी को जापानी मंत्रिमंडल का गैर-सरकारी सलाहकार बनाया गया क्योंकि वह जापानी प्रधानमंत्री प्रिंस कोतो का अभिन्न मित्र था। तीन बार कोतो की सरकार गिरी और तीन बार बनी लेकिन होजुमी की स्थिति ज्यों की त्यों बनी रही। इसके बावजूद होजुमी में जापानी सैन्यवाद का विरोध करने की प्रवृत्ति थी। यही वह सूत्र था, जिसके सहारे वह स्मडले तक पहुंचा और बाद में सोर्गी का दोस्त बना। सोर्गी का तीसरा साथी था, शंघाई में गुप्त रेडियो स्टेशन चलाने वाला रूसी जासूस क्लाउसेन। क्लाउसेन सोर्गी का मास्को से संबंध जोड़े रखता था। वह अपने रेडियो स्टेशन की मदद से जापानी संदेश पकड़ कर रूस भेजता रहता था। क्लाउसेन एक गंवारू और भौंडे चेहरे वाला भारी भरकम शरीर का जर्मन था।

सन् 1933 में सोर्गी की जर्मन यात्रा ने उसकी उस उपलब्धि की नींव डाली, जो बड़े-बड़े जासूसों को आज भी आश्चर्यचकित कर देती है। बर्लिन के चार समाचार पत्रों का टोकियो में संवाददाता बनने की स्वीकृति तो सोर्गी ने प्राप्त की ही थी, साथ-साथ उसने नाजी पार्टी की सदस्यता भी ग्रहण कर ली। उसकी सदस्यता की अर्जी कैसे मंजूर हुई—इसका रहस्य अभी तक नहीं खुल पाया है। उन चार जर्मन समाचार पत्रों में एक 'फ्रैंकफुर्त साइतुंग' भी था, जिसके प्रतिनिधि के रूप में स्मडले चीन में रूस के लिए जासूसी करती थी।

प्रतिष्ठित नाजी बनकर सोर्गी जर्मनी से अमेरिका और कनाडा होता हुआ जापान लौटा। वह कुछ दिन याकोहामा में रुका लेकिन वहां वातावरण शांत था। फलस्वरूप वह टोकियो चला आया, जहां एक संभ्रांत मुहल्ले में उसने मकान लिया और पत्रकारिता शुरू की। इसी बीच उसने जापान के पत्रकारिता जगत पर अपना रूआब गालिब कर लिया। इस काम में उसके आकर्षक व्यक्तित्व और विस्तृत ज्ञान ने उसकी काफी मदद की।

सोर्गी की अंतिम और निर्णायक उपलब्धि थी—टोकियो के जर्मन दूतावास में घुसपैठ करना। शुरू में सोर्गी को इस काम में बार-बार असफलता मिली। वैसे भी यह काम सरल नहीं था। तभी संयोग से एक ऐसा व्यक्ति जर्मनी का राजदूत बनकर टोकियो आया, जिसे एशियायी मामलों की कोई जानकारी न थी। उसे एक गैरसरकारी सलाहकार की जरूरत थी, जिसे अपनी नाजी प्रतिष्ठा के दम पर सोर्गी

पूरा करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। राजदूत ओट और सोर्गी की जान-पहचान सी जरूरत के आधार पर पक्की होती चली गई।

सोर्गी ने अपने घर के अंदर एक डार्करूम बनवाया, जहां वह गुप्त दस्तावेजों की फोटो तैयार कर लिया करता। ये फिल्में जासूसी सम्पर्कों के माध्यम से रूस पहुंच जाया करती थीं। गुप्त सूचनाएं सोर्गी को जर्मन दूतावास से ही मिला करती थीं। सोर्गी जापान की सूचनाएं और विश्लेषण राजदूत ओट को देता तथा बदले में ओट उसे जर्मन दस्तावेज और सूचनाएं दिखाकर उसकी राय मांगता। जर्मन दूतावास के अन्य अधिकारी, विशेषकर सैनिक सचिव भी सोर्गी को अपनी फाइलें दिखाने लगे और उसकी राय पूछने लगे। दूतावास का गेस्टापो (नाजी जासूसी संगठन) का प्रधान भी सोर्गी के चक्कर में फंस गया। दूसरा विश्वयुद्ध होते ही सोर्गी को आधिकारिक रूप से दूतावास का प्रेस सचिव बना दिया गया। अब वह नाजी विदेश विभाग का एक सम्मानित अधिकारी था। उसे लम्बी तनख्वाह और सुविधाएं मिलने लगीं। वह प्रातः यूरोप में युद्ध की प्रगति पर सूचनाएं तैयार करता और राजदूत ओट के साथ नाश्ते पर टोकियो के राजनीतिक क्षेत्र मे उड़ने वाली अफवाहों पर चर्चा करता। राजदूत उसे जरूरी सूचनाएं बताता। सोर्गी की इस विशेष हैसियत से दूतावास के दूसरे अधिकारी काफी प्रभावित रहते थे।

27 सितम्बर, सन् 1940 को धुरी राष्ट्रों की संधि पर हस्ताक्षर होते ही सोर्गी को जर्मनी ही नहीं, वरन् जापान की सूचनाएं भी मिलने लगीं क्योंकि संधि के बाद जापानी सैनिक अधिकारी और ज्यादा खुले रूप से जर्मन दूतावास से विचार-विमर्श करने लगे थे। अब सोर्गी को जापानी मंत्रिमण्डल तथा सम्राट के महल के अंदर की सूचनाएं चाहिए थीं। इस काम के लिए होजुमी ने दस ऐसे व्यक्तियों को पटा लिया, जो यह काम कर सकते थे। सोर्गी की चालाकी और सफाई इस बात में निहित थी कि वह व्यक्तिगत रूप से केवल होजुमी से मिलता था तथा क्लाउसेन से सम्पर्क रखता था। रेस्तरां, बार, चिड़ियाघर या घर पर उनकी मुलाकातें होतीं। दोनों में से कोई व्यक्ति सिगरेट पीने की इच्छा जाहिर करता। इस पर उसे सिगरेट की जो डिब्बी पेश की जाती, उसमें सूचनाओं और दस्तावेजों की फिल्में भरी होतीं। सिगरेट जला चुकने के बाद जब डिब्बी वापस की जाती तो दूसरा कहता, "इसे आप रखिए, मेरे पास दूसरा है। सोर्गी का हथकण्डा अपने गिरोह को छोटा रखने का था। वह जापानी कम्युनिस्टों तथा अन्य रूसी जासूसों से हमेशा दूर रहता।

सन् 1935 में सोर्गी ने पत्रकारिता के बहाने यूरोप जाकर कोमिण्टर्न की कम्युनिस्ट कांग्रेस में हिस्सा लिया। वह अपने जर्मन पासपोर्ट से बर्लिन से न्यूयार्क गया। न्यूयार्क से सोवियत वीसा लेकर रूस गया तथा वहां से जापान लौट आया। टोकियो में सोर्गी ने 'क्लाउसेन एण्ड कम्पनी' की स्थापना की योजना बनाई। शीघ्र ही यह कम्पनी छपाई की मशीनें बनाने और बेचने लगी। इसे मुनाफे की स्थिति में

आने में देर न लगी क्योंकि जापान की बड़ी-बडी फर्में और जल व थल सेना इस कम्पनी से माल खरीदने लगी। सन् 1941 तक यह ज्वाइण्ट स्टॉक कम्पनी बन गई, जिसकी पूंजी एक लाख येन (जापानी मुद्रा) थी और जिसमें 85000 येन क्लाउसेन का ही शेयर था। इस कम्पनी से इतना लाभ होने लगा कि सोर्गी की जासूसी का पूरा खर्च बडे आराम से चलने लगा। न्यूयार्क, सैनफ्रांसिस्को व शंघाई में उसका बैंक खाता खुल गया।

सन् 1939 से ही सोर्गी के लिए अमेरिकी बैंकों से पैसा मंगाना असंभव हो गया था, इसलिए टोकियो के थियेटरों में क्लाउसेन के हाथों में नोटों के बंडल सोवियत दूतावास के अधिकारियो द्वारा पकडाए जाने लगे। जैसे ही थियेटर की बत्तियां गुल होतीं, वैसे ही निर्दिष्ट सीट पर बैठा क्लाउसेन अपने दायीं ओर बैठे पड़ौसी के हाथों में फिल्में पकड़ा देता और बदले में उसे हजारों डालर के बंडल मिल जाते। वैसे सोर्गी के गिरोह का पूरा खर्चा केवल तीन हजार येन था, जो उसके द्वारा सप्लाई की गई बहुमूल्य सू[illegible]
का मूल्य रुपयों [illegible]
था। होजुमी ने [illegible]
से मिलने वाली तनख्वाह का अधिकाश हिस्सा छोटे-छोटे जासूसों के ऊपर खर्च हो जाता था। गिरोह का खजांची क्लाउसेन था, जो साल में एक बार आमदनी और खर्चे का हिसाब सोर्गी को सौंपता और सोर्गी उसकी फोटो कापी मास्को भेज देता।

0 मई, सन् 1941 को सोर्गी ने मास्को को बताया कि सोवियत सीमाओ पर जर्मन के 170-190 डिवीजन जमा हो रहे हैं। 20 जून को उसने सूचना दी कि के हमले की दिशा मास्को की ओर होगी। ठीक 22 जून को हिटलर ने हमला कर दिया। इसके बाद सोर्गी ने रूस की पूर्वी सीमा पर जापानी गतिविधियों का विश्लेषण प्रारम्भ कर दिया क्योंकि जापानी नीति के इस मोड़ पर ही सोवियत संघ का भविष्य बहुत कुछ टिका हुआ था। 15 जुलाई को जापान द्वारा रूस की पूर्वी सीमा पर हमला न करने की विश्लेषणयुक्त सूचना सोर्गी ने रूस भेज दी। 2 जुलाई को जापानी मंत्रिमंडल की बैठक में यह निर्णय लिया गया था। इससे पता चलता है कि सोर्गी की पैठ कितनी गहरी थी।

सोर्गी को लगने लगा था कि उसे मास्को लौट जाना चाहिए। उसने अपनी अंतिम रिपोर्ट में यह सुझाव लिख भी दिया। दुर्भाग्य से इस रिपोर्ट को भेजने से पहले ही उसे गिरफ्तार कर लिया गया। सोर्गी का पर्दाफाश उसकी गलती से नहीं हुआ। दक्षिण मंचूरिया रेलवे के टोकियो दफ्तर में रिस्तु नामक जापानी नौजवान की गिरफ्तारी से यह पोल खुली। रिस्तु होजुमी का सम्पर्क था। उसने सब कुछ उगल दिया। सोर्गी के साथ क्लाउसेन भी पकड़ा गया। क्लाउसेन ने सबसे पहले जबान खोली और जापानी पुलिस की यातनाओं के समक्ष वह पराजित हो गया।

प्रारंभ में सोर्गी के मित्र जर्मन राजदूत को लगा कि जापानी पुलिस ने बड़ी गलती की है, इसलिए उसने सोर्गी को छुड़ाने की कोशिश भी की। बाद में जापानी पुलिस के बार-बार कहने पर उसे भी लगने लगा कि अगर वास्तव में सोर्गी रूसी जासूस निकला तो स्वयं उसकी बडी भारी फजीहत होगी।

क्लाउसेन के टूटने के बाद सोर्गी ने मुंह बंद रखने में कोई फायदा न देखा। उसने तर्क दिया कि उसने सूचनाएं प्राप्त करने में किसी अनुचित तरीके का प्रयोग नहीं किया। उसे देने वाले स्वेच्छा से सूचनाएं दे दिया करते थे। सोर्गी ने होजुमी के लिए भी यही दलील दी। जापानी अदालत ने स्वाभाविक रूप से इस तर्क को ठुकरा दिया। इस तरह डा. रिचर्ड सोर्गी के अत्यंत सफल और आश्चर्यजनक जासूसी जीवन की इतिश्री हो गई।

सोर्गी की मृत्यु के बाद अमेरिकी सरकार ने जनरल मैक आर्थर को उसके बारे में एक रपट बनाने का काम सौंपा। यह तथ्यपूर्ण रपट बेहद विचित्र और अचम्भे में डाल देने वाली थी। इस रपट को जब अमेरिकी कांग्रेस के सामने पेश किया गया तो सोर्गी की कहानी दुनिया के सामने आई। इससे एक बारगी तो सारी दुनिया में तहलका मच गया। अपनी रपट मे मैक आर्थर ने लिखा था--"इस आदमी ने स्तालिन को बचाया"।

●●

मृत्यु पर विजय पाने वाला अभिनय

यहान शतौनी का पूरा जीवन ही अभिनय था। उसे हर पल अभिनय करने की आदत थी। अभिनय उसका पेशा अथवा शौक तक ही सीमित न रहकर, उसकी दिनचर्या का एक महत्वपूर्ण अंग बन चुका था।

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान उस समय जब रूस व्यापक उथल-पुथल से गुजर रहा था, शतौनी ने हिंसक हो रहे असंतुष्ट सैनिकों के क्रोध से कुछ फौजी अफसरों को बचाया था। यह कारनामा उसने किसी बंदूक या पिस्तौल के बलबूते पर या किसी साजिश के तहत नहीं किया था—उसका हथियार था, उसका शानदार व्यक्तित्व, अभिनयक्षमता, आत्मविश्वास और तीन पेज लम्बे ऐसे संवाद, जिनका मौजूदा परिस्थिति से कोई संबंध नहीं था।

दुनिया में शायद शतौनी से भी बड़े अभिनेता हुए होंगे लेकिन न किसी को ऐसा मौका मिला होगा और न ही किसी ने ऐसा अभिनय किया होगा।

21

मंच पर अभिनय करना अपेक्षाकृत सरल है लेकिन वास्तविक जिंदगी में अभिनय करना बेहद कठिन है, लगभग असम्भव। फिर भी मानव हमेशा, तमाम असम्भव कामों को सम्भव बनाता रहा है। वहान शतौनी का नाम भी एक ऐसे ही कारनामे के लिए विख्यात था। उसने अपनी जिंदगी में बहुत बार मंच पर अद्भुत अभिनय करके प्रशंसा अर्जित की थी लेकिन एक क्षण ऐसा भी आया जब अभिनय मे असफलता का अर्थ था सीधे-सीधे मृत्यु और सफलता का अर्थ था जीवन।

वास्तव मे वह समय ऐसा ही था। रूस के येरेवान रेलवे स्टेशन पर एक रेलगाडी से 65 सैनिक अफसर पहुंचे। उन्ही के पीछे-पीछे एक अन्य मालगाड़ी में सैकड़ों सैनिक उतरे। ये सैनिक इन अफसरों के खून के प्यासे हो रहे थे। सन् 1917 की रूसी क्रांति के बाद प्रथम विश्वयुद्ध के मोर्चों से रूसी सैनिक भारी संख्या में भाग रहे थे। जारशाही के दिनों में इन सैनिकों को भारी मुसीबतों का सामना करना पड़ा था। सैनिक इसके लिए इन्ही अफसरों को जिम्मेदार समझते थे।

स्टेशन के वातावरण में कत्लेआम की गंध थी। ऐसे में स्टेशन मास्टर ने शतौनी को फोन किया। शतौनी उन दिनों येरेवान शहर का कमाण्डर था। यही शतौनी कभी मंच पर अपने दबंग व्यक्तित्व और अभिनय के दम पर गजब ढाया करता था।

खबर मिलते ही शतौनी स्टेशन के तनावपूर्ण वातावरण में आ पहुंचा। क्रोधित सैनिक अफसरों की रेलगाड़ी को घेरे हुए थे। वे उन्हें रेलगाडी से उतारकर अदालत में पेश करने की मांग कर रहे थे। शतौनी के आने से पहले वे एक बूढ़े लेफ्टीनेंट कर्नल का हुक्म मानने से इनकार कर चुके थे।

खून के प्यासे इन सैनिकों को इस समय फौजी हुक्म नहीं कोई चमत्कार ही रोक सकता था। क्या शतौनी वह चमत्कार दिखा सका? क्या वह अपने दमदार नाटकीय अभिनय से उनको सतुष्ट कर पाया?

वहान शतौनी रूसी-तुर्की सीमा के पास काकेशस की पहाड़ियो में तिफलिस का रहने वाला था। उसमें बचपन से ही अभिनय की प्रतिभा थी। किशोरावस्था में ही आर्मीनियायी रंगमंच का उदीयमान अभिनेता बनने के बाद शतौनी के जीवन में दो अभिलाषाएं उभरीं—'हैमलेट' नाटक में उदास डाने की भूमिका अदा करना तथा उन दिनों के लोकप्रिय नाटक 'ओरॉल अकोस्ता' के नायक का अभिनय करना।

शतौनी ने अपनी दूसरी महत्वाकांक्षा अत्यंत विलक्षण परिस्थितियों में अवश्य पूरी की लेकिन 'हैमलेट' मे उसे भूमिका नहीं मिल पाई। हां, वह शेक्सपीयर के इस नाटक में लेर्ट्स की छोटी भूमिका अवश्य निबाहता रहा।

शतौनी 6 फुट से ज्यादा लम्बा, चौडे कंधों व पतली कमर का बेहद खूबसूरत युवक था। उसकी चाल मे जैसे शेर और अरबी घोडे की शान का मिश्रण था। काली बडी-बड़ी आंखो तथा नुकीली नाक के सम्मिलित प्रभाव से वह मिलने वालों या अभिनय देखने वालो पर अपना बड़ा जबर्दस्त प्रभाव छोडता। महिलाएं उस पर आसानी से मोहित हो जातीं तथा पुरुष उससे ईर्ष्या करते।

शतौनी का विश्वास था कि एक अभिनेता के रूप मे मंच पर प्रवेश तथा मंच से नेपथ्य में चले जाने की शैली पर सर्वाधिक ध्यान देना जरूरी है। लम्बा-तगडा शतौनी ब्रिजिस पहने हुए जब मंच पर आता तो दर्शकों में सनसनी फैल जाती। नाटक के चौथे अक मे लेर्ट्स बना हुआ शतौनी पहले तो मंच द्वार की देहलीज पर पल भर रुकता फिर हल्की से छलांग भरकर मंच पर आ खड़ा होता। दर्शक उसकी इस अदा से चमत्कृत हो जाते।

इसी भूमिका में एक बार शतौनी के साथ एक दुर्घटना घटी। वह मंच पर छलांग भर कर आने ही वाला था कि उसका पैर देहलीज मे फंस गया और 6 फुट 2 इंच लम्बा उसका शरीर मुंह के बल मंच पर गिर पड़ा। दर्शक इस दुर्घटना पर हंसने ही वाले थे कि पल भर मे शतौनी गेंद की तरह उछल कर खडा हो गया और मंच पर पहले से मौजूद राजा के सामने अपने आग उगलते हुए संवाद इतने असरदार ढंग से बोलने लगा कि दर्शकों की हंसी उनके गले में ही रुक गई। उस दिन शतौनी ने ऐसा अभिनय किया कि राजा-रानी की भूमिका करने वाले कलाकार वास्तव में डर गए। इस दुर्घटना ने साबित कर दिया कि वास्तव में शतौनी के अंदर असम्भव को संभव कर देने वाले तथा हार को जीत में बदल देने वाले गुण विद्यमान हैं।

शतौनी में रोमाचक कहानियां सुनाने की भी एक अद्भुत योग्यता थी। ये रोमांचक कहानियां खुद उसके अपने बारे मे ही होतीं। कोई उन पर जरा भी विश्वास न करता लेकिन शतौनी की कहानियां सुनने का मौका भी कोई हाथ से न निकलने देता।

प्रथम विश्वयुद्ध में शतौनी घुड़सवार सेना में भर्ती हो गया। घुड़सवार सैनिक वर्दी में शतौनी का व्यक्तित्व बेहद शानदार लगता। चमकते हुए काले लांग बूट, कलफ लगी हुई कलगी व चांदी की तरह चमकती हुई काकेशियन तलवार। भर्ती के पश्चात् वह तिफलिस से मोर्चे के लिए रवाना हो गया। लेकिन शतौनी के मोर्चे पर जाने की खबर शायद उसके आत्मप्रचार का एक और नमूना थी क्योंकि जानकार लोगों का कहना था कि वह येरेवान भेजा गया है और उसे दफ्तर में काम मिला है।

अचानक शतौनी दो सप्ताह की छुट्टी पर तिफलिस लौट आया। प्लेटफार्म पर उतरने से पहले उसने अपना बायां हाथ कोट के बटन मे इस तरह डाल दिया कि जैसे हाथ घायल हो। लोगों के जिज्ञासायुक्त प्रश्नों के उत्तर मे उसका कहना था कि उसने अपने हाथों सैकडों तुर्की सैनिक खत्म कर दिए। इसी दौरान उसका बायां हाथ जख्मी हो गया। शतौनी हर नए व्यक्ति को अपनी बहादुरी की नई कहानी सुनाता। लोगों को यकीन हो चला कि बहादुरी मे शतौनी का कोई सानी नही है।

फिर आई सन् 1917 की सोवियत क्रांति। राजा रंक हो गया। रक राजा बन गए। जारशाही के अफसर पदों से हटा दिए गए। येरेवान शहर का कमाण्डर अपदस्थ कर दिया गया और उसकी जगह शतौनी को चुन लिया गया।

दिन व रात में कई बार शतौनी शहर की सड़कों पर अपनी शानदार बग्घी मे निकलता। जनता समझती उनका कमाण्डर उनके बारे में बहुत चिंतित है। शतौनी बग्घी मे कभी बैठता नही था वरन् खड़ा रहता। बग्घी के आगे काकेशियायी वर्दी मे 6 घुड़सवार चला करते। लोग इस दृश्य को देखकर बहुत प्रभावित होते।

असली मामला यह था कि शतौनी जल्दी ही दफ्तरी काम-काज से ऊब जाता। वह बहाना करता कि उसे दिल की बीमारी है। यह दूसरी बात है कि उसे कभी दिल का दौरा नहीं पड़ा था लेकिन इस बहाने से उसे जीवन की क्षण-भंगुरता और आत्मा की अमरता का फलसफा बघार कर उसे सामान्य लोगों को प्रभावित करने का मौका मिलता। कभी-कभी वह दिल मे दर्द होने का लाजवाब अभिनय करता। वह सीने पर हाथ रखकर दोहरा हो जाता। उसे फौरन एक गिलास पानी पेश किया जाता। वह गिलास से दो घूंट पानी पीता और प्रभावशाली ढंग से कहता—'यह तो कुछ भी नही था।' जब वह लोगों से मुलाकात करते हुए ऊब जाता तभी उस पर दिल के ये नकली दौरे पडने लगते।

इस तरह शतौनी को अपने जीवन का हर क्षण अभिनय में गुजारने का शौक था। ऐसे समय में उसे अचानक एक दिन येरेवान रेलवे स्टेशन के स्टेशन मास्टर का फोन मिला, जिसमे नाराज सैनिकों द्वारा अफसरों के कत्ल की आशंका व्यक्त की गई थी।

शतौनी इस बार बग्घी के बजाय एक खुली कार में सवार होकर स्टेशन पहुंचा। 12 घुड़सवार उसके आगे और 12 घुड़सवार उसके पीछे चल रहे थे। बीच में वह खुली कार के अंदर शान से पूरी वर्दी में खड़ा हुआ था। अपनी तीक्ष्ण दृष्टि से उसने पल भर में ही सारे परिदृश्य का जायजा ले लिया। कार के रुकने से कुछ पहले ही वह छलांग मार कर नीचे उतर आया। अकेला शतौनी अपने दबदबे से विद्रोही सिपाहियों को प्रभावित करता हुआ बिना रुके हुए उनकी बगल से गुजरा और चीते की सी तीन छलांगों मे प्लेटफार्म पर रखे हुए बोरों और बक्सों के मंच पर चढ गया। उसने अपनी बाहें आश्चर्यचकित सिपाहियों की तरफ फैलाई और असरदार आवाज में चिल्लाया—"सिपाहियों, मेरे पास आओ।" सशस्त्र और क्रोधित

सिपाही थोड़ा हिचके लेकिन पल भर बाद ही वे खिसक कर उस मंच के नीचे आ गए। वे अवाक् से अपना मुंह खोले हुए उसे देख रहे थे।

शतौनी ने अपनी ओर घूरती आखो मे सीधे-सीधे मंच से झांका और फिर वह अपने खास अदाज मे अपना परिचय देते हुए बोला—"साथियो, कृपया मेरी बात सुनो। मै येरेवाल शहर का कमाण्डेण्ट हू, जिसे जनता की क्रांतिकारी इच्छा द्वारा चुना गया है। मैं शतौनी हू।"

सन्नाटा छा गया। शतौनी को यह भी लगा कि उसके नाम का उन सिपाहियों के लिए कोई मतलब नहीं है। इसलिए उसने अचानक एक अनपेक्षित हरकत की। उसने अपने दोनो हाथो से अपनी वर्दी को सीने के पास से फाड डाला और अपना नंगा सीना सिपाहियो की ओर करते हुए बोला—"मेरे सीने पर पत्थर मारो। अपने गुस्से को मुझ पर निकालो।" शतौनी की वर्दी के सुनहरे बटन प्लेटफार्म पर बिखर चुके थे।

इसके बाद शतौनी 'ओरेल्ल अकोस्ता' नाटक की उस भूमिका के संवादो को प्रभावशाली अदाज मे बोलने लगा, जिसे खेलना उसके जीवन की एक अभिलाषा थी। वह तीन पेज लम्बे सवाद बोलता चला गया। हालांकि इन संवादों का मौजूदा परिस्थिति से कोई सबध न था। शतौनी के स्वगत भाषण का जादू भरा असर सैनिको को सम्मोहित कर चुका था। इस बीच शतौनी अपनी आंख के किनारे से अफसरो की रेलगाडी को सरकते हुए देख रहा था। जब शतौनी ने अंतिम वाक्य समाप्त किया तो रेलगाडी बहुत दूर निकल चुकी थी। केवल उसका धुंधला-सा निशान भर दिख रहा था।

सिपाहियो की तालियो से पूरा प्लेटफार्म गूज उठा लेकिन शतौनी का अभिनय अभी समाप्त नही हुआ था। वह अचानक अपना सीना हाथ से दबाकर दोहरा हो गया। उसके गले से हमेशा की तरह एक नर्म आवाज निकली—"एक गिलास पानी।" कई सिपाही दौडकर उसके लिए पानी ले आए। दूसरों ने कमाण्डेण्ट को सहारा दिया। शतौनी ने पानी के कुछ घूंट लिए और हमेशा की तरह बोला, "कुछ नही। मुझे कुछ नही हुआ।" सिपाहियो ने उसे उसकी कार में बैठा दिया। इस बार शतौनी खडा नही रहा, वरन् कार की गद्दी से टेक लगाकर बैठ गया। कुछ ही पलो मे शतौनी की सवारी आंखों से ओझल हो चुकी थी।

वास्तव मे जिन लोगो को उस समय शतौनी के अभिनय का ऊपर वर्णित अंश देखने को मिला, उनका दावा था कि उन्होंने अपने जीवन का सर्वश्रेष्ठ अभिनय देखा है। ठीक भी था 'शतौनी दं मैगनीफिसंट' के जीवन की वह सर्वश्रेष्ठ भूमिका थी।

■■